जागरणम्

श्रीशिवशरणशर्मणा विरचितम्
संस्कृतस्याभिनवम् गीतिकाव्यम्

भारती–निकेतन
अमरजयी, फतेहपुर उ० प्र०

प्रकाशकः	केदारनाथ त्रिपाठी **भारती-निकेतन** अमरजयी, फतेहपुर उ० प्र०
मुद्रकः	द्वारिकेश मिश्रः **श्रीराम प्रेस, झांसी उ० प्र०**
संस्करणम्	प्रथमम् (१५०० प्रति)
वत्सरः	१९६३ ई०
मूल्यम्	१ रु० २५ नये पैसे

विदुषां सम्मतयः

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र, कविताकिकचक्रवर्ती पं० महादेव शास्त्री
(भू० पू० अध्यक्ष, संस्कृतमहाविद्यालय, हिन्दूविश्वविद्यालय काशी)

"... संस्कृत-साहित्य मे प्रवाहित होने वाली, गेय-काव्य की सरस्वती, यत्र-तत्र एव यदा-कदा, लुप्त तथा प्रकट होती हुई बहती रही है। प्रस्तुत कृति इसी दूरागत विरल-धार सरस्वती का एक प्रकट रूप है। इसमे सुरभारती के प्रस्तुत उपासक ने, अपने हृदय के उद्गारो को, गीति-पद्धति के माध्यम से सकलित किया है। इसमें कवि के मानस से उठी हुई रग-बिरंगी उर्मियां लक्षित होती हैं। क्वचित् देश-वासियो को स्फूर्तिप्रद उद्बोधना, क्वचित् राष्ट्र के अतीत की मधुर स्मृति, एव क्वचित् विशुद्ध साहित्यिक उद्गार भरे पड़े हैं। भाषा मे पर्याप्त लोच है, और भावो को व्यक्त कर देने की पूर्ण क्षमता। कहते हैं, कि भावो की दौडान मे भाषा पिछड़ जाती है, पर कवि की वाक् शक्ति देखने से यह तथ्य तिरोहित हो जाता है। परमात्मा ऐसे कुशल गीतिकार को चिरायु बनावे, ताकि उसके द्वारा साहित्य की श्री-वृद्धि निरन्तर होती रहे।"

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी
(अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, पजाब विश्वविद्यालय)

"......'शरण' जी ने आधुनिक भावों को, आधुनिक छन्दो मे निबद्ध किया है। मुझे इन संस्कृत-कविताओं को देखकर बडा आनन्द आया।"

डा० बाबूराम सक्सेना

(भू० पू० अध्यक्ष, स० वि०, प्रयाग विश्वविद्यालय)

" इन गीतो मे माधुर्य और लय है, तथा साथ ही साथ उच्च-भावना। विश्वास है, कि यह रचना नवयुवको को प्रेरणा दे सकेगी। इस सफल प्रयास के लिए शर्मा जी बधाई के पात्र हैं।"

पं० बटुकनाथ शास्त्री खिस्ते

(प्राध्यापक, वाराणसेय सस्कृत विश्वविद्यालय)

" सरसया, सरलया, सहृदयहृदयचुम्बिन्या सरण्या समुपनिबद्ध नूनमिद 'जागरणम्' नाम काव्यरत्न, सामाजिकेषु समादृत भविष्यति।"

पं० भूपेन्द्रपति त्रिपाठी (अहियापुर प्रयाग)

" नूनमिद (वाङ्मय) सम्स्कृताधीतीना तत्प्रणयिनामपि पथिप्रदर्शक मनोग्राहकम भविष्यत्कवीना ज्योतिष्प्रदञ्च सेत्स्यति। काव्यस्यास्य विषया सर्वथा आधुनिका अपि, सस्कृत-सरणेरतिक्रमण नैव कुर्वन्ति।"

प० सोहनलाल द्विवेदी (बिन्दकी उ० प्र०)

" सस्कृत की इस अभिनव रचना का समुचित स्वागत एव सत्कार होगा, और सस्कृत के साथ हिन्दी के भी पाठक इसे पढकर आनन्द प्राप्त करेंगे, इसमे कोई सन्देह नही।"

पं० हरिदत्त शर्मा (अध्यक्ष स० वि०,डी०ए०वी० कालेज, कानपुर)

"शिवस्य सद्यश करी, कृतिर्जगत्प्रियङ्करी।
प्रचारमेतु भारते, हरेरिव शुभैषणा"॥

भाषाविद् डा० सुनीतिकुमार चटर्जी

(अध्यक्ष, प० बगाल विधान-परिषद्)

" . आई एम् वेरी ग्लैड्, टु फाइण्ड् ऐन् ऐकाम्प्लिश्ड् सस्कृत राइटर इन् यू। दि पोएम्स् शो, ए फाइन् इमैजिनेशन्, ऐण्ड् ए फेलिसिटी आव डिक्शन्, व्हिच् आर क्वाइट् प्रेजवर्दी। आइ एम् श्योर, योर बुक् विल् हैव् पापुलरिटी इट् डिजर्व्स ।"

पद्मभूषण पं० सूर्यनारायण व्यास

(उज्जयिनी)

" सस्कृत भाषा मे गेयकाव्य अति स्वल्प है, और इधर गेयकाव्यों की नव-रचना भी नही-वत् हुई है। 'जागरणम्' इस दृष्टि से अभिनव, मौलिक, मधुर और रम्य रचना है। मुझे बहुत प्रिय लगी है। सस्कृत-समाज मे इस कृति का स्वागत अवश्य होगा।"

पं० न० वि० गाडगिल

(भू० पू० राज्यपाल, पञ्जाब)

" रचना अभिनव सरल और मधुर है। हिन्दी-अनुवाद देने से सस्कृत-प्रचार का कार्य भी पूरा होता है।"

राष्ट्रकवि डा० मैथिलीशरण गुप्त

(ससद-सदस्य, चिरगाँव-झांसी)

" भाषा कठिन नही है, और भाव भी सरस-सरल हैं।"

सम्पादकाचार्य पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

(ससद-सदस्य, नई दिल्ली)

" यद्यपि मैं सस्कृत थोडी सी ही जानता हू, तथापि आपके गीतों के आनन्द का अनुभव कर सका।"

अनुक्रमः

● ● ●

• • निवेदनम्

साम्प्रतममरभारत्या अल्पप्रचारमुपेक्षा च विलोक्य ज्वलतीव मे मानसम् । कैश्चिदतिक्लिष्टा, सामान्यजनदुरुहा चेय मन्यते । केचन कथयन्ति, यन्नेय नवयुगानुकूला, न चाधुनिकया शैल्यामभिनवभावप्रकाशने क्षमेति । केचन तु मृतभाषेयमित्यपि प्रलपन्ति ।

इत्येवमादीनाक्षेपान् तु जना अज्ञानादेव कुर्वन्ति, परन्तु वय सस्कृतज्ञा एव साम्प्रत स्ववाणीसेवनाद् विमुखा इत्यय वेदनाया विपय । एतत् सुखकर, यत् स्वातन्त्र्यलाभानन्तर केचन महापुरुषा सस्कृतोन्नतिविपये कृतप्रयत्ना सन्ति । सुरभारत्यर्चनेच्छयैव क्षुद्रोऽय जनोऽपि, जागरणाख्य स्वय-स्फुटितभावसुमनोऽञ्जलि नीत्वा समायात । अनेन लघुप्रयासेन भारत्या कोऽपि लाभो भवतु न वा, परन्तु स्वकर्तव्यपालनमुख त्वनुभूयत एवानेन जनेन ।

प्रस्तुत काव्य प्रायो गीतिपद्धतिमनुसृत्य लिखितम् । इद समधिकजनोपयोगि स्यादित्यनेन विचारेण भाषासारल्यार्थं बहुप्रयत्नो विहित । अतएव सन्धयोऽपि केवल सरलस्थलेषु एव विहिता । एतेनैव च विचारेण, मूलगीतै सहैव तेषा हिन्दी'—भाषानुवादोऽपि दीयते । अनुवादोऽयमतीव सक्षिप्त । क्वचिदय शब्दाश्रित, क्वचिद् भावाश्रितो वा । व्याख्यान तु विज्ञाधीनमेव वर्तत ।

मम स्वल्पज्ञस्य कृतौ च्युतयस्तु सभाव्या एव । परन्तु—

"मूर्खो वदति विष्णाय, विद्वान् वदति विष्णवे ।

उभयोस्तु फल तुल्य, भावग्राही जनार्दन" ॥

एतदनुसार जनार्दनाशभूता विज्ञा सर्वथैव तिरस्कार न करिष्यन्तीति आशा । न यश पाण्डित्यप्रदर्शन वा लक्ष्यम्, अपितु शरीरेणैतेन मनोभावैश्च देववाण्या मातृभूमेश्च कापि सेवा स्यादित्यनेनैव भावेन पुस्तिका लिख्यते । यैर्महानुभावै इमा विलोक्य परामर्शदानस्य, सम्मतिप्रेषणस्य वानुकम्पा विहिता, तान् प्रत्यतीव कृतज्ञोऽय जन । 'मुद्राराक्षस'—कृपाप्रभावनिवारणाय विहितस्य श्रमस्य कृते श्रीद्वारिकेशमिश्रोऽपि धन्यवादार्हं एव ।

त्रुटिनिर्देशपूर्वक, पण्डिता क्षमादानमवश्यमेव करिष्यन्तीति विश्रमिति—

दतिया (म० प्र०)
श्रीरामनवमी
वि० स० २०२०

सहृदयानामनुचर —
शिवशरणशर्मा

• • • भूमिका

संस्कृत भाषा ने अपने अभ्युत्थान और पतन के अनेक विहान देखे, किन्तु अपने सरस-मसृण सौन्दर्य के कारण, वह सर्वदा सहृदयों के हृदय की साम्राज्ञी बनी रही। इसकी, एकमात्र आह्लादमयी एव नवरसरुचिरा रचनाओं का समादर आजतक अक्षुण्ण रूप से होता आया है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त, इसके भी उन्नयन एव प्रसार की ओर, कुछ प्रभावशाली महापुरुषों का ध्यान गया है, यह हमारी आदर्श सस्कृति के उत्कर्ष का शुभलक्षण है।

ऐसे समय मे, जबकि सस्कृत की रचनाये करने मे इने-गिने लोग ही प्रवृत्त होते हैं, किसी तरुण साहित्यानुरागी का उसके साहित्य की समृद्धि के निमित्त सचेष्ट होना, स्तुत्य ही माना जायगा। इसी लिये मुझे डा. श्री शिवशरणशर्मा के 'जागरणम्' शीर्षक मे प्रकाशित होने वाले सस्कृत के मुक्तक गीतों के इस सग्रह को देखकर बडा ही आह्लाद हुआ।

प्रस्तुत संग्रह में आरम्भ से अन्त तक उत्साह का उत्स सा प्रवाहित है। इसका प्राय: प्रत्येक गीत, उदात्त भावनाओं से ओत-प्रोत है। 'कविं प्रति' तथा 'उद्‌बोधनम्' आदि रचनाओं में कवि की उस ओजमयी वाणी के दर्शन होते है, जो तरुण पाठकों के हृदय में उत्साह की हिलोरें उठाये बिना न रहेगी। संघर्षों से जी बचाकर आराम की इच्छा करना, कवि के अनुसार नपुंसकता है। वह तो ओज भरे शब्दों में घोषणा करता है —

'अत्र विरामेच्छा क्लीवत्वं, संसारो वै संसरणम्'।

इसी रचना में कवि की महाप्राणता का अतिसुन्दर दर्शन हमें वहाँ मिलता है, जब वह सतत-जीवन-संघर्ष में जर्जर होते हुये भी, दु:ख के सामने घुटने नहीं टेकता; वरन् वीरता-पूर्वक उसे ललकारते हुये कहता है —

"अरे दु:ख! त्रिदशान् प्रपीडयसि भीतान् त्वं व्यर्थं दीनान्,
शक्तिश्चेदागच्छ मदीयं सम्मुखमिह हित्वा हीनान्"।

भारतभूमि की वन्दना, एवं राष्ट्र की प्रशंसा के विषय में लिखे गये गीतों में, हमें देशभक्ति के निर्मल एवं स्वाभाविक रूप के दर्शन मिलते हैं। भारत के विषय में कही हुई —

"अन्येषामपि कृते सर्वदा सानन्दं सहसे क्लेशम्"

यह उक्ति कितनी यथार्थ एवं गौरवपूर्ण है।

कवि के कुछ गीतों के विषय, ऊपर से शृंगारिक जैसे प्रतीत होते हैं, परन्तु पढ़ने पर उनके अन्दर भी उदात्त भावना ही मिलती है। भ्रमरगीत की विरहिणी, अपने प्रियतम के, जगत्-कल्याण-हेतु चले जाने

पर, गौरव-मय सन्तोष का ही अनुभव करती है। इसी भांति वृन्दावन को भी, कवि, कर्मयोगी की लीला-भूमि के रूप मे देखना नही भूला। 'प्रभातवेला' का आह्वान करते हुये जब कवि कहता है —

"जीवे जीवे स्याद् बन्धुत्व, कुर्यो कर्यो सुस्नेह"

तब तो पाठक के समक्ष एक दिव्य विश्वबन्धुत्व की मूर्ति ही साकार हो उठती है। इसी भांति 'स्वात्मनिरीक्षणम्' मे कवि, इस जीवन को सफल तभी मानता है, जब उसके द्वारा जगत का हित-साधन किया जाय।

सरलतम भाषा म स्वाभाविक चित्रण, इस काव्य की विशेषता है। कवि अलकारो के चक्कर म नही पडा। अस्तु रचना, प्रसाद-गुण-बहुला है। माधुर्य एव ओज तो पर्याप्त है ही। 'वृन्दावनम्' शीर्षक गीत की —

"निर्मलकालिन्दीश्यामलजलविलसततलोलतरङ्गम्"

इस पक्ति के द्वारा ही पाठक, माधुर्य एव भाषागत प्रवाह का अनुमान कर सकते है।

इस सग्रह की एक विशेषता और है, कि इसके बहुसख्यक गीत, वाद्यो पर भी गाये जा सकते हैं। अस्तु ये कवि-हृदय की सगीत-प्रियता के भी परिचायक है।

यद्यपि यह कवि का प्रथम प्रयास है, तथापि वह पूर्ण सफल हुआ है। अस्तु मैं उसे धन्यवाद देते हुये, मगलमय प्रभु से उसके चिरजीवन की प्रार्थना करता हू, ताकि वह भविष्य मे भी सरस्वती के आराधन मे लीन रह सके।

—रामचन्द्र मालवीय
सहायक रजिस्ट्रार, वाराणसेय-सस्कृत-विश्वविद्यालय

कविपरिचयः

नाम— श्री शिवशरणशर्मा ।

पितरौ— कान्यकुब्जद्विजश्रेष्ठः पं० सत्यनारायणद्विवेद. (पिता), श्रीमती सौभाग्यवती (माता) ।

जन्मस्थलम्— 'ग्राम-भैरमपुर, पत्रालय-मण्डासराय, जनपद—फतेहपुर उ० प्र०' इति ।

जन्माब्दः— वि० सं० १९८५

पदव्य.— डी० फिल्०, प्रयागविश्वविद्यालयतः; एम० ए० (संस्कृत+हिन्दी), काशीहिन्दुविश्व-विद्यालयत.; शास्त्री, वाराणसेयसंस्कृतविश्व-विद्यालयतः ।

व्यवसायः—'शासकीय-स्नातक-महाविद्यालय दतिया म० प्र०' इत्यत्र प्राध्यापकः ।

कार्याणि— 'श्रीमद्भागवतानुशीलन' 'कालिदास और उनका मेघदूत' इत्यादयोऽन्येऽपि ग्रन्था लिखिताः । सागर-विश्वविद्यालयस्य समितेः (कोर्ट) सदस्यरूपेण सेवा कृता । साहित्यालोचनहिन्दी-कविताद्यध्ययने तल्लेखने चास्य रुचिः ।

—प्रकाशकः

कवि :-

डा० शिवशरणशर्मा

एम० ए०, डी० फिल० शास्त्री

विज्ञानेन्दुविभाविकासितजगन्निद्रानुचिन्ताभिनीम्,
तेज.पौरुषसाहसादिजननीं, श्रद्धामयीं वत्सलाम्।
गम्भीरां कलनादिनीं रसमयीं, गङ्गावदुल्लोलिनीम्,
वन्दे त्वां कवितेश्वरि! त्रिभुवने, सौहार्दसञ्चारिणीम्॥

भरतमही • • •

जयतु जयतु भरतमही पुण्यशालिनी ।
मन्दरविन्ध्येन्द्रकील—
मलयश्रीशैलनील—
हिमगिरिशीतलसमीरतापहारिणी ॥ १

सूर्यसुतामहानदी—
शोणसिन्धुविष्णुपदी—
सलिलसुधासिक्ततनुर्लोकपावनी ॥ २

बहुविधसाधनसहिता,
दुर्गाऽखिलशक्तियुता,
सज्जनपालननिरता, दुष्टनाशिनी ॥ ३

शौर्यतपस्त्यागमयी,
शान्तिरता कान्तिमयी,
जननीयं क्षेममयी स्नेहरूपिणी ॥ ४

• • •भरत भूमि

पुण्यशालिनी भरतभूमि की जय हो ! जय हो !!
मन्दराचल, विन्ध्याचल, इन्द्रकील, मलयगिरि, श्रीशैल, नीलाचल, एव पर्वतराज हिमालय की शीतल समीर के द्वारा, समस्त तापो का हरण करने वाली भरतभूमि की जय हो ! १ ॥

सूर्यपुत्री यमुना, महानदी, शोणनद, सिन्धुनदी, एव देवनदी भागीरथी गङ्गा के अमृतोपम जल से अभिषिक्त शरीर वाली, लोकपावनी भरतभूमि की जय हो ! २ ॥

अनेकों प्रकार के साधनो से युक्त, अखिल-शक्ति-मयी साक्षात् दुर्गा–स्वरूपा, सज्जनो के पालन मे तत्पर, एव दुष्टो का विनाश करने वाली भरतभूमि की जय हो ! ३ ॥

शौर्य, तपस्या, एव त्याग से समन्वित, शान्तिप्रिया, तेजस्विनी, क्षेम एव प्रेम की मूर्ति, तथा जननीस्वरूपा भरतभूमि की जय हो ! ४ ॥

याचना॰॰॰

मातर्देहि कृपापाथेयम्
येनाहं जीवनयात्रायां, सोल्लासं गच्छेयम् ॥ १

आर्ये देहि तपस्त्यागं मे, मोहं नाशय सर्वम् ।
पूरय मे विनयेन शरीरं, हर निःशेषं गर्वम् ॥ २

कृतकृत्यं कुरु मामकिञ्चनं, वितर परामनुरक्तिम् ।
निरन्तरं जगतः सेवार्थं, वर्धयस्व मम शक्तिम् ॥ ३

अखिलां भेदभावनामपनय, शमय च विषयपरत्वम् ।
मम मानसे जीवमात्रं प्रति, विस्तारय बन्धुत्वम् ॥ ४

• • •याचना

हे माँ । तुम मुझे अपनी कृपा का पाथेय प्रदान करो, जिससे कि मै अपनी जीवन-यात्रा मे उल्लास-पूर्वक आगे वढता रहू ।। १

मुझे ऋषियो का तप एव त्याग प्रदान करो, तथा मेरे समस्त मोह को नष्ट कर दो । मेरे शरीर को नम्रता से भर दो, तथा मेरा अखिल अभिमान दूर कर दो ।। २

हे माँ । तुम अपनी परम अनुरक्ति प्रदान करके, मुझ अकिञ्चन को कृत-कृत्य करदो , तथा इस ससार की निरन्तर सेवा करते रहने के हेतु, मेरी शक्ति मे भी वृद्धि कर दो ।। ३

मात । मेरी समस्त भेद-भावना को दूर भगादो, विषय-परता को शान्त करदो, तथा मेरे हृदय मे प्राणि-मात्र के प्रति वन्धुत्व का विस्तार करदो ।। ४

प्रभातवेला • • •

आगच्छतु सा प्रभातवेला
भवतु सकलसुखमूला यस्याम्, उषसो मङ्गलखेला ॥ १

वातु शीतलो मलयसमीरो, नीत्वा कुसुमसुवासम् ।
काननेषु नृत्यन्तु मञ्जुला, वल्लर्यः सविलासम् ॥ २

लुप्यतु निखिलविरोधभावना; प्रवहतु दयाप्रवाहः ।
ज्ञानारुण उदयतु; महीतले, यातु वृद्धिमुत्साहः ॥ ३

मोहतिमिरनिद्राऽऽलस्यानाम्, अचिरं नश्यतु सत्ता ।
तेजोमयी जयतु कल्याणी, कर्मरता मानवता ॥ ४

प्रसरतु समताया आलोको, विलसतु सौख्यसमूहः ।
जने जने विकसतु बन्धुत्व, कणे कणे सुस्नेहः ॥ ५

• • • प्रभात वेला

संसार में उस शुभ प्रभातवेला का अविर्भाव हो, जिसमें ऊषा की समस्त सुखो की मूल, मगल-मयी क्रीडा हो रही हो ॥ १

शीतल मलय-समीर, कुसुम-सौरभ से युक्त होकर वहे, एव मंजुल-लताये वनो मे विलास-पूर्वक नृत्य करें ॥ २

समस्त विरोध-भावनाओं का लोप हो जाय, करुणा की धारा वह चले, ज्ञान-रूपी सूर्य का 'उदय हो, तथा जगती में अभिनव उत्साह छा जाय ॥ ३

मोह, अन्धकार, निद्रा, तथा आलस्य की सत्ता शीघ्र ही नष्ट हो जाय; एवं तेजस्विनी, कल्याण-मयी तथा कर्मशीला मानवता की जय हो ॥ ४

विश्व में समता का आलोक फैल जाय, सौख्य-समूह विलसित हो, एवं जन-जन में बन्धुत्व का विकास हो, तथा कण-कण मे मञ्जुल प्रेम का ।

जागरणम्° • •

निद्रां त्यक्त्वा जागृहि शीघ्रं, बन्धो ! निशा व्यतीता हे !

(१)

परमपावनी प्रभातवेला,
युक्ता नैतस्या अवहेला,
अभिषेकार्थमागता प्राची, मुदिता कुङ्कुमहस्ता, हे !

(२)

बालारुणोऽभियातीदानीम्,
भीतं विशति तमोऽरण्यानीम्,
नीडेभ्यो निर्यान्ति शकुन्ताः, कर्मपथे रवयुक्ता, हे !

(३)

किरति सुगन्धं विकसितपुष्पा
वनराजिर्धृतलताकलापा
जनमानसमुकुलानि फुल्लतां, नय, निजदीप्ति दत्वा, हे !

(४)

वेलेयं नोचिता शयार्थम्,
पुरुषोऽसित्वं भज पुरुषार्थम्,
द्रुतमुत्तिष्ठ विजयलाभार्थं, भैरवनादं कृत्वा, हे !

• • •जागरण

हे सखे ! निशा व्यतीत हो चुकी है । अव निद्रा त्याग-कर, तू शीघ्र ही जाग जा ।

(१)

यह प्रात काल की परमपावन वेला है । अस्तु इसकी अवहेलना करनी उचित नही । देख ! हाथ मे कुकुम लिये हुए, मोदमयी प्राची दिशा, तेरा अभिषेक करने के लिए आयी हुई है ।

(२)

इस समय वाल-सूर्य भी अभियान कर रहा है, जिससे डरा हुआ अन्धकार, भागकर घने जगलो मे घुसा जा रहा है । साथ ही, कलरव करने वाला पक्षि-वृन्द भी, अपने नीडो से निकल कर, कर्मपथ पर अग्रसर होरहा है ।

(३)

लता-रूपी आभूषण धारण करने वाली, एव विकसित कुसुमो से युक्त वनराजि, इस समय सौरभ विखेर रही है । हे सखे ! जगत के जन-मन रूपी मुकुलो को, अब, तू अपनी दीप्ति से प्रफुल्लित करदे ।

(४)

यह समय शयन करन के लिए उपयुक्त नही है । तू तो पुरुष है, अत यह काल तेरे पुरुषार्थ करने का है । हे वीर ! विजय-लाभ-हेतु, अब तू शीघ्र ही भैरव-निनाद करके खडा हो जा ।

कविं प्रति • • •

किमद्यापि ते सैव रागिणी ?

(१)

युगं व्यतीतं, कालो यातो, यस्मिन् गीतो मधुरो रागः,
शून्यमद्य मधुवनं वर्तते, नहि सुमानि, कीदृशः परागः ?
कथं प्रचण्डनिदाघे भ्रातर्मल्लारं गायति ते वाणी ?

(२)

अलङ्कृते रम्ये पदबन्धे, भृशमुक्ता नायिकाविभेदाः,
बहुशस्त्वया वर्णिता बन्धो ! प्रेममयाः परिहासविनोदाः;
किन्तु गतं तद् युगं, साम्प्रतं वागिष्टा भैरवनिनादिनी ।

(३)

नाद्य रोचते लीलाविभ्रमकान्तकामिनीरूपचित्रणम्,
नापि रोचते नगरवीथिकावनवसन्तकुसुमादिवर्णनम्;
रुद्ररसानामेवापेक्षा, नाभीष्टा ते मधुरशिखरिणी ।

(४)

तद् गानं गीयतां, यन्मनसि कुरुतां नवसाहससञ्चारम्,
उत्तिष्ठन्तु जना यच्छ्रुत्वा, सद्य एव कृत्वा हुङ्कारम्;
अथवा भज मूकतां,यतो मा कलङ्किता स्याद् हंसगामिनी ।

...कवि के प्रति

हे कवे ! क्या आज भी तू वही पुरानी रागिनी अलाप रहा है ?

(१)

जबकि तू अपना मधुर राग गाया करता था, आज वह युग भी व्यतीत हो गया है, और समय भी । आज तो तेरा मधुवन उजड़ा हुआ पड़ा है । उसमे फूल ही नही है, तो फिर भला ! पराग की क्या बात ? हे कवे ! आज इस भीषण निदाघ मे, तेरी वाणी, मल्हार कैसे अलाप रही है ?

(२)

अलकृत एव रमणीय पदावली मे नायिका-भेदो एव प्रेमपूर्ण परिहास-विनोदो का वर्णन तू ने बहुत कर लिया है । हे सखे ! अब यह सब करते रहने का समय नही रहा । अब तो केवल भैरव-निनाद करने वाली ही वाणी की आवश्यकता है ।

(३)

आज न तो लीला एव विलास से मनोज्ञ कामिनियो का सौन्दर्य-चित्रण ही अच्छा लगता है, और न नगर, वीथी, उपवन, वसन्त, एव कुसुमादिको का वर्णन ही । आज तो तेरी मधुर शिखरिणी की नही, वरन् रुद्र-रसो की ही आवश्यकता है ।

(४)

आज तो तू कोई ऐसा गीत गा, जो कि हृदयो मे नवीन साहस का सञ्चार कर सके, तथा जिसे सुनकर लोग शीघ्र ही हुकार करके उठ खड़े हो जाँय । अन्यथा हे सखे ! तू मौन ही धारण कर, जिससे कि माता सरस्वती कलकित तो न हो सके ।

उद्बोधनम् • • •

धावनमितस्ततो वृथा सखे !, स्वीय गन्तव्य निर्धारय ।
प्रचलन् कर्तव्यपथे पुण्ये, भ्रान्तानपि सन्मार्गं दर्शय ॥

(१)

त्व ज्ञानवान् विज्ञानवान्
वैभवशाली त्व शक्तिमान् ।
गुणवानस्यजरामरस्सुधी
ससारे तव महिमा महान् ॥
तव कृते कर्मयोगिन् ! प्रगते.
प्रत्येक द्वारमनवरुद्धम् ।
तव दृष्टिपातमात्रेण सदा
दुष्करमपीह कार्य सिद्धम् ॥

तेजस्विन् ! त्वमसि वीरपुत्रो, गौरवमनुरूप हृदि धारय ॥

(२)

त्वयि शाक्यमुने करुणाऽनन्ता,
भीमस्य बल, कृष्णस्य कर्म ।
निश्चय वहसि गङ्गासूनो,
ज्ञात त्वयाऽखिल जगन्मर्म ॥
दुष्टाना हन्ता रामस्त्वम्
कृतवान् भूमि रक्षोहीनाम् ।
वनजन्य कष्ट सहमान.
पीडा नाशितवान् लोकानाम् ॥

एकदा समस्त ससार निजकान्त्या पुन सम्प्रकाशय ॥

• • • उद्‌बोधन

हे सखे ! इधर-उधर भटकना बेकार है। तू अपने गन्तव्य-स्थल का निश्चय करले, एवं पावन कर्तव्य-पथ पर चलते हुए भूले-भटको का भी सन्मार्ग-दर्शन कर।

(१)

हे सखे ! तू ज्ञानवान, विज्ञानवान, वैभवशाली, शक्तिमान, गुणवान, अजर-अमर, एवं परम बुद्धिमान है। इस जगती मे तेरी बहुत बडी महिमा है। हे कर्मयोगी ! तेरे लिए संसार मे प्रगति का प्रत्येक द्वार खुला हुआ है, तथा तेरे दृष्टिपात-मात्र मे जगत के कठिन से कठिन कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं। हे तेजस्वी ! तू वीर-पुत्र है। अतः अपने वंशानुरूप गौरव को हृदय मे धारण कर।

(२)

तेरे अन्दर भगवान बुद्ध की अपार करुणा, भीमसेन का बल, तथा योगिराज श्रीकृष्ण का कर्म विद्यमान है। तू पितामह भीष्म के निश्चय को धारण करने वाला, एवं जगत के अखिल मर्म का ज्ञाता है। जिन्होंने वनवास के दुखो को सहते हुये भी, पृथ्वी को राक्षस-हीन करके, लोक की पीडा का विनाश किया था, ऐसे दुष्ट-नाशक भगवान राम का स्वरूप भी तो तू ही है। अतः अपने तेज से इस समस्त संसार को एकबार तू पुनः प्रकाशित कर दे।

(३)

हे जगद्गुरो ! वसुधानायक !!
याता कुत्र ते प्रगतिमत्ता ?
महदाश्चर्यं यत् तव निकटे
मन्दता कथमहो ! समागता ?
त्वं महासमरजेता, भुवने
पुरुपार्थसाधना ते ख्याता ।
कस्मादधुना भजते दैन्यं
हे वीर धनञ्जय ! तव माता ?
तव यशःपटे कालिमालक्ष्म यत् लग्नं तदरं प्रक्षालय ।।

(४)

हा ! मोहनिशायां सुप्तस्त्वम्,
जागृहि शीघ्रं निद्रां हित्वा ।
उत्तिष्ठ साम्प्रतं पुरुषसिंह !
गर्जनं महाभीमं कृत्वा ।।
त्वं सकलदुरितनाशक्षमोऽसि
संस्मर पराक्रमिन् ! निजशक्तिम् ।
को रणस्थले स्थातुं शक्तः ?
त्वं यदि धारयसि वीरवृत्तिम् ।।
संसृतिं वेदनामयीं वीर ! निजपौरुषेण शीघ्रं हर्षय ।।

(३)

हे वसुधा के नायक जगद्गुरु ! आज तुम्हारी प्रगतिशीलता कहा चली गई ? बडे आश्चर्य की बात है, कि तुम्हारे निकट आज मन्दता कैसे आ पहुची ? तुम तो महासमरो के विजेता हो, एव तुम्हारी पुरुषार्थ-साधना ससार भर मे विख्यात है। हे वीर धनञ्जय ! बताओ तो कि भला तुम्हारी भी जननी आज दैन्य-दु ख क्यो भोग रही है ? वीरवर ! तुम्हारे शुभ्र कीर्ति-पट मे आज जो कालिमा का धब्बा लग गया है, उसे अब शीघ्र ही धो डालो ।

(४)

अरे ! तू अब भी मोह-रात्रि मे ही सोया हुआ है ? हे पुरुषसिंह ! अब तू नींद को त्यागकर शीघ्र ही जाग, एव भीषण गर्जना करके खडा हो जा। तू जगत के समस्त पापो को नष्ट करने मे समर्थ है। हे पराक्रमशाली ! तू अपनी शक्ति का स्मरण कर। यदि तू वीर-वृत्ति को धारण करले, तो समराङ्गण मे तेरे समक्ष ठहर ही कौन सकता है ? हे वीर ! अपने पौरुष के द्वारा इस वेदनामयी ससृति को तू शीघ्र ही हर्षित कर दे ।

जय जय भारतमातः !

जय जय भारतमातर्जय हे ! जय जय भारतमातः ।

(१)

अभिषिञ्चन्ति सुधासलिलैस्त्वां, गङ्गाद्याः शुभनद्यः,
पावनसन्दर्शनैस्त्वदीयैः, पापं नश्यति सद्यः ;
पुण्यस्तव मृदुवातः ।

(२)

स्नेहमयी करुणामयहृदया, विमले ! त्वं ब्रह्माणी,
मङ्गलमूला गुञ्जति लोके, रससिक्ता तव वाणी ;
तव महिमाऽत्यवदातः ।

(३)

रामकृष्णभीमार्जुनमुख्याः, कृतलोकोत्तरलीलाः,
व्यासबुद्धशंकरप्रभृतयो, भवहितसाधनशीलाः ;
तेऽङ्के खेलितवन्तः ।

भारतमाता

हे भारत जननि ! तेरी जय हो !

मातः ! मैं बारम्बार तेरी विजय की कामना करता हूं ।

(१)

गङ्गा इत्यादि मंगलमयी नदियाँ, अपने अमृतोपम जल से निरन्तर तेरा अभिषेक करती रहती हैं, तेरे पावन दर्शनो के द्वारा पाप-पुञ्ज शीघ्र ही नष्ट हो जाते है, एवं तेरा मृदुल समीर अत्यन्त पुण्यमय है ।

(२)

हे विमले ! तू स्नेहमयी, करुणा से परिपूर्ण मानस वाली, एव साक्षात् ब्रह्माणी-स्वरुपा है । इस ससार मे रस से भीगी हुई तेरी मङ्गलमूला वाणी, निरन्तर गूजा करती है। हे मा ! तेरी महिमा नितात निर्मल है ।

(३)

लोकोत्तर कार्य, तथा ससार का हित-साधन, करने वाले भगवान राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, वेदव्यास, बुद्धदेव तथा आचार्य शंकर इत्यादि अनेक महापुरुष, तेरी ही गोद मे तो खेले है ।

(४)

चत्वारिंशत्कोटिमितास्ते—पुत्रा जयिनो वीराः,
वज्रबाहुधृतखरकरवालाः साहसिनो रणधीराः;
कस्त्वां जेतुं शक्तः ?

(५)

निखिलकलुषचयनाशिनि! दिव्ये!! त्वमसि सदा-कल्याणी,
अभिवाञ्छितवरदायिनि! वन्द्ये!! त्वं वत्सला भवानी;
तुभ्यं मे प्रणिपातः ।

(४)

तेरे चालीस करोड़ विजयशील वीर पुत्र (तेरी रक्षा के हेतु) अपनी वज्र–सदृश भुजाओं मे तीक्ष्ण तलवारें धारण किये हुए हैं। उन साहसी रणधीरों के रहते हुए, तुझे जीत लेने का सामर्थ्य भला किसमें हो सकता है ?

(५)

हे समस्त पापसमूहों का विनाश करने वाली दिव्य माँ ! तू निरन्तर कल्याण करने वाली है। समस्त कामनाओं को पूर्ण करने वाली हे वन्दनीये ! तू साक्षात् वत्सला भवानी है। हे मां ! तेरे लिए मेरा नितान्त विनत नमस्कार है !

निश्चयः • • •

कीदृशं सुखसेवनं रे !
व्याकुला जननी, मदीयं, ज्वलति रम्यनिकेतनं रे !

(१)

दुःखितास्ते, यैः सहाहं, सर्वदा निवसामि गेहे,
क्षीणकाया निस्सहायाः, सर्वथा पतिता विमोहे;
वद कथं गायानि ? परितः, श्रूयते यदि रोदनं रे !

(२)

स्वर्णभूमिरियं मनोज्ञा, हन्त ! जाता दैन्यपूर्णा,
पीडिताऽस्ति बुभुक्षया या, स्वामिनी स्वयमन्नपूर्णा;
कीदृशी शान्तिर्विनाऽस्याः, सर्वदुःखविदारणं रे !

(३)

आगतो यदि लक्ष्यमार्गे, किं भयं दुःखानि दृष्ट्वा ?
कण्टकानिच्छामि बन्धो ! सर्वथा कुसुमानि हित्वा;
स्वेप्सितं प्राप्स्याम्यहं, त्यक्ष्यामि वेदं जीवनं रे !

• • •निश्चय

जब कि मेरा रमणीय निकेतन जल रहा है, तथा मेरी माता अत्यन्त व्याकुल पडी हुई है, ऐसे समय मे भला सुखोप-भोग की कल्पना कैसी ?

(१)

जिनके बीच, मैं निरन्तर निवास करता हूं, मेरे वे समस्त कुटुम्बी–जन, पीडित, असहाय, क्षीणकाय एवं पूर्णरूपेण किंकर्तव्य विमूढ हो रहे है। जिस समय चारो ओर से करुण–क्रन्दन सुनाई दे रहा हो, बताओ भला उस समय मै कैसे गाऊँ?

(२)

हाय ! यह हमारी मञ्जुल सुवर्णभूमि, आज अत्यन्त दीन–हीन हो रही है। कितने आश्चर्य की बात है ! कि जो समस्त ऐश्वर्यों की स्वामिनी, एव स्वय जगत का भरण करने वाली अन्नपूर्णा थी, वही आज क्षुधा से तडप रही है। हे सखे! इसके समस्त दु खों का विनाश किये विना, भला मुझे चैन कहाँ ?

(३)

कर्तव्य-मार्ग मे उतर आने पर, कष्टो से डरना कैसा ? हे सखे ! मैं तो अब फूलों को छोड़कर, सर्वथा कण्टको पर ही चलना चाहता हू। यातो मैं अपने लक्ष्य को ही प्राप्त कर के रहूंगा अथवा यह जीवन ही त्याग दूगा।

प्रयाणगानम्

पौरुषं कुरुष्व हे !
नानयं सहस्व हे !!

(१)

वीर ! शौर्यशालिनाम्
वंशजोऽसि मानिनाम्;
अद्य दुष्टपापिनाम्
त्वं क्षयं कुरुष्व हे !

(२)

कृत्यमेव जीवनम्,
मृत्युरेव जीवनम्;
जहि सखे ! सुखासनम्,
योधनं भजस्व हे !

(३)

काल आहुतेरयम्,
हन्त ! कीदृशं भयम् ?
मृत्युमन्यथा जयम्
सत्वरं वृणीष्व हे !

(४)

तव जयः सुनिश्चितः,
ते रिपुः स्वयं हतः;
धर्मसङ्गरे स्थितः
त्वं यशो लभस्व हे !

प्रयाणगान

हे वीर ! (इस समय) तू अपना पौरुष प्रकट कर, एवं अन्याय को (न [illegible]) न सहन कर।

(१)

वीरवर ! तू अमित-पराक्रमशाली एवं स्वात्माभिमानी महापुरुषों की सन्तान है। आज तू समस्त दुष्ट पापियों का संहार कर डाल।

(२)

इस संसार में कुछ कर जाना, अथवा आन पर वीरता-पूर्वक मर मिटना ही सच्चा जीवन है। हे सखे ! अब तू सुख-शय्या को त्याग दे, एवं रणाङ्गण की ओर प्रस्थान कर।

(३)

यह तो आहुति की पावन वेला है। अहो ! इसमें डरना कैसा ? इस समय अविलम्ब ही, तू विजय अथवा मृत्यु का वरण कर।

(४)

तेरी विजय तो बिल्कुल निश्चित ही है। तेरा शत्रु तो स्वयं ही मर चुका है। तुझे तो अब धर्म-समर में आरूढ होकर, केवल कीर्ति-लाभ ही करना है।

भारतदेशः

प्रार्थयामो देश भारतवर्ष हे !
देहि पूर्वस्मिन् स्वरूपे दर्शनम् ।
यत्र स्युर्दुग्धस्य नद्यस्सर्वतो,
मोदयुक्तं स्यात् समेषां जीवनम्,
बंधुवत् स्युर्यत्र सर्वे प्राणिनः,
स्नेहतः स्यात् सर्वमप्यनुशासनम् ।
यत्र भक्तिज्ञानसत्कर्मस्थिति,
यत्र शौर्यं दुष्कृतानां नाशनम् ॥ १

कुत्र गोपालस्त्वदीयो वर्तते ?
श्रूयते किं तेन नहि गोक्रन्दनम्?
रावणारिः किं न पश्यति साम्प्रतं,
दुर्जनानां कर्म परमं दारुणम् ।
नेह सौहार्दं न सत्यं शान्तिदं,
स्वार्थवृत्तैरेव भूमौ शासनम् ॥ २

• • •भारत देश

हे भारतदेश ! हमारी तुझसे यही प्रार्थना है, कि तू अपने पूर्व-स्वरूप मे ही दर्शन देने की कृपा कर ।

तू अपने उसी स्वरूप मे दर्शन दे, जिसमे चारो ओर दूध की नदियाँ बहती हो, एव सभी का जीवन मोदयुक्त हो, जिसमे सारे प्राणी, भाई भाई की भाति रहते हो, एव सारा अनुशासन प्रेमपूर्वक होता हो, तथा जिसमे भक्ति, ज्ञान, सत्कर्म, एव पापनाशक पराक्रम विद्यमान हो ।। १

इस समय तेरा गोपाल कहा है ? क्या उसे गो-क्रन्दन नही सुनाई दे रहा ? रावणारि भगवान राम क्या इस समय दुष्टो के अतिदारुण कार्यो को नही देख रहे ? इस समय यहा पर न तो शान्ति प्रदान करने वाला सत्य ही रह गया है, और न सौमनस्य ही, वरन् पृथ्वी मे केवल स्वार्थ-वृत्ति का ही शासन है ।। २

संसृतौ घोरारिभीतेभ्यस्त्वया,
शक्तिशालिन्! दत्तमभयं सर्वदा,
दुर्मदान्धा लोकपीडाकारकाः,
त्वत्समक्षं संस्थिता युद्धे कदा ?
जम्बुकास्तिष्ठन्ति किं निकटे ? यदा
श्रूयते सिंहस्य भीमं गर्जनम् ॥ ३

नाद्य तुष्टिर्वैभवैर्भोगैस्तथा,
नापि विज्ञानस्य यन्त्रैर्लभ्यते,
कीदृशीयं भौतिकी सम्पन्नता ?
मानसे शांतिर्न चेदिह विद्यते ।
आत्मविज्ञानं त्वदीयं वाञ्छितं,
यत् समस्तानां सुखानां साधनम् ॥ ४

हे पराक्रमशालिन् ! तूने संसार मे भयंकर शत्रुओं से डरे हुए लोगो को सदैव अभयदान दिया है । अभिमान से अन्धे एव दुनिया को पीडा पहुचाने वाले दुष्ट लोग, तेरे सामने युद्धस्थल मे कब टिक सके है ? जिस समय सिंह का भीम गर्जन सुनाई देता है, उस समय गीदड भला क्या नजदीक रुक सकते है ? ३

आज ऐश्वर्य, भोग, तथा वैज्ञानिक यन्त्रो आदि के द्वारा ससार को सतोष नही मिल रहा । जब कि हृदयों मे शान्ति ही नही है, तब भौतिक उन्नति ही किस काम की ? हे भारत ! आज तेरे उसी आत्मविज्ञान की आवश्यकता है, जो संसार के समस्त सुखो का उद्गमस्थल है ॥ ४

राष्ट्रदेवः • • •

राष्ट्रदेव ! समोदं क्रियते, तुभ्यमात्मसमर्पणम्,
जीवनकुसुमैरेव भवेत्तव, पूर्ण मङ्गलमर्चनम् ।

(१)

तव सेवार्थमेव रघुवीरः स्वीकृतवानिह वनवासम्,
अस्थिदानपूर्वकं दधीचिः प्राणानददाच्च सहासम् ।
वन्द्यास्ते, यैः कृतं तवार्थे प्रेम्णा जीवनबलिदानम् ॥

(२)

तव मङ्गलमय्यां भूमौ गृह्यते जन्म पुरुषैर्धन्यैः,
त्वत्सेवावसरस्तु लभ्यते पूर्वकृतैर्विपुलैः पुण्यैः ।
परमपावनं चरणरजस्तव दिव्यं निखिलपापहरणम् ॥

(३)

त्वं सर्वेषां सुहृत्, त्वदीयं मनः सर्वथा निर्द्वेषम्,
अन्येषामपि कृते सर्वदा सानन्दं सहसे क्लेशम् ।
शक्तिमयो निष्कामस्त्वं, संसारे हीनानां शरणम् ॥

(४)

एकस्मिन् दिवसे त्वं सर्वेषां गुरुरासीर्विख्यातः,
अद्यास्मत्कर्तव्यादतिविषमां दुरवस्थां हा ! सम्प्राप्तः ।
धिग् जीवनमस्माकं यत् पश्यामस्त्वां विपदामशनम् ॥

हे राष्ट्रदेव ! तुम्हारे लिए मैं महर्ष आत्मसमर्पण कर रहा हूं। तुम्हारा मगलमय अर्चन, जीवन-रूपी कुसुमो के द्वारा ही किया जाना चाहिये।

तुम्हारी सेवा के हेतु ही भगवान् राम ने वनवास स्वीकार किया था, एव दधीचि ने अपनी अस्थियो तक का दान करके, हँसते-हँसते प्राणोत्सर्ग किया था। जिन वीरो ने, प्रेम-पूर्वक तुम्हारे लिए अपने जीवन का बलिदान किया है, वे परम वन्दनीय है।१

तुम्हारी मगलमयी भूमि मे भाग्यशाली मनुष्य ही जन्म ग्रहण करते है; एव तुम्हारी सेवा करने का अवसर पूर्व-जन्म के अपार पुण्यो से ही प्राप्त होता है। देव ! तुम्हारी परम-पावनी दिव्य चरण-धूलि समस्त पापो को दूर करने वाली है।२

राष्ट्रदेव ! भारत !! तुम ससार मे सभी के मित्र हो, एव तुम्हारा हृदय पूर्ण–रूपेण द्वेष–रहित है। तुम परकीयो के हेतु भी मुख से कष्ट सहन करते रहते हो। तुम शक्तिशाली, निष्काम, एव ससार के दीन-हीनो को शरण प्रदान करने वाले हो।३

एक दिन तुम इस ससार के विख्यात गुरु थे; पर हाय ! खेद है, कि आज तुम हमारी पौरुष-हीनता से अति विषम एव शोचनीय अवस्था को प्राप्त हो रहे हो। आज तो हम सभी के जीवन को धिक्कार है, कि जो हम तुम्हे विपत्तियो मे डूबा हुआ देख रहे है।४

स्वतन्त्रतेयं नास्ति खेलनम्,
स्वतन्त्रतेयं लौहचर्वणम् !

(१)

अस्याः कुले 'प्रतापो' वीरः, त्यक्त्वा सौधं वनं प्रयातः,
शूरः 'शिवराजो'ऽपि जीवने, युद्धान्नैव विरामं प्राप्तः,
'झाँसीश्वरी' कृतवती वीरा, लक्ष्मीरपि जीवनबलिदानम्।

(२)

'भक्तसिंह'--सदृशैर्नरवीरैः, यौवनमुकुलरसेन चर्चिता,
बहुभिस्सततं चास्या मूर्तिर्निजजीवनकुसुमैः समर्चिता;
'मोहनदासो' भिक्षुर्भूत्वा, कृतवानस्याः पादसेवनम्।

स्वतन्त्रता

स्वतन्त्रता कोई खिलवाड नही है। यह तो साक्षात् लोहे का चबाना है।

(१)

इस स्वतन्त्रता के लिए ही, वीरवर महाराणा प्रताप, राजमहलों को त्याग कर वन वन भटकते रहे; शूर शिवाजी जीवन भर निरन्तर रणागण मे ही डटे रहे, एव झाँसी की वीरागना महारानी लक्ष्मीबाई ने अपने जीवन का ही बलिदान कर दिया।

(२)

भक्तसिंह जैसे नरवीरो ने अपनी जवानी-रूपी अधखिली कलियो के रस से ही, इस स्वतन्त्रता देवी का चर्चन (अग-लेपन) किया है। अनेको ज्ञात तथा अज्ञात साधक, अपने जीवन-रूपी सुमनो के द्वारा, इसकी मूर्ति का शुभ अर्चन निरतर करते रहे हैं। महात्मा गाँधी जैसे महापुरुष भी त्यागी बनकर, जीवन-पर्यन्त निरतर, इसकी चरण-सेवा मे लगे रहे हैं।

(३)

नैको, द्वौ, वा त्रयः, सैनिका अत्रागणिताः पतन्त्याहुतौ,
महान् भवति रक्षाया भारः तस्मादस्या, देशसन्ततौ;
दक्षस्तिष्ठ विहायालस्य, महाकठिनमस्याः सुरक्षणम् ।

(४)

अस्याः कृते लौहपुरुषाणामेवापेक्षा, न तु विलासिनाम्,
अथचापेक्षा कर्मयोगिनां, राष्ट्रसेविनां, न प्रलोभिनाम्;
ते दूरं व्रजन्तु शीघ्रं, ये कर्तुमशक्ता मृत्योर्वरणम् ।

(३)

इस देवी की प्राप्ति के हेतु, यज्ञाग्नि मे केवल एक, दो, या तीन को ही नही, वरन् अगणित सैनिको को होम होना पडता है। इसीलिये तो देश की सन्तान के ऊपर, इसकी रक्षा का बहुत बडा भार रहता है। हे सखे! आलस्य त्यागकर सावधान रह, क्योकि इसकी सुरक्षा का कार्य और भी कठिन होता है।

(४)

इसके लिये विलासियो की नही, वरन् लौह-पुरुषो की, तथा लोभियो की नही, वरन् देशभक्त कर्मयोगियो की ही आवश्यकता होती है। जो मृत्यु का वरण करने मे असमर्थ हो, वे शीघ्र ही इससे दूर हट जांय।

भारतवसुन्धरा • • •

किमियमेव भारतवसुन्धरा ?

(१)

किमियमेव भृगुपतिवशिष्ठविश्वामित्रादीनामपि जननी ?
किमियमेव निजकरुणदृष्टिजलसिक्तसकललोका, सनातनी?
किमत्रैव निःसृता व्यासवाल्मीकिकालिदासानां वाणी ?
भवसन्तप्तमनस्सु सन्ततं मधुररससुधासारवर्षिणी ।
अस्या एव चरणसेवायामत्र किमायान्तिस्म निर्जराः ?

(२)

किमत्रैव जाता भूतलवन्द्या गार्गीसावित्रीसीताः ?
किमत्रैव गीता मोहितजनमार्गदर्शिनी भगवद्गीता ?
किमतीते काले नितरामत्रैवाभूद् दर्शनसुविचारः ?
अस्या एव सुतैर्विहितः किं लोके सदा शान्तिसञ्चारः ?
कथमद्य दृश्यते शान्तिरत्रापि कष्टमन्यायमन्तरा ?

...भारत-वसुन्धरा

अहो ! क्या भारत-वसुन्धरा यही है ?

क्या भृगुपति, वशिष्ठ, एव विश्वामित्र आदि महर्षियो की जन्मभूमि यही है ? जिसने अपने करुणदृष्टि-रूपी जल से समस्त संसार को सिंचित किया था, क्या यह वही सनातनी है ? भवताप से सन्तप्त हृदयो के ऊपर मधुर-रसामृत की धाराओ का वर्षण करने वाली, व्यास, वाल्मीकि, एव कालिदास आदि महाकवियों की वाणी, क्या इसी भूमि मे निःसृत हुई थी ? क्या देवता लोग इसी की चरणसेवा करने के हेतु यहाँ आया करते थे ? १

ससार भर मे वन्दनीय, गार्गी, सावित्री, एवं सीता आदि देविया, क्या यही उत्पन्न हुई थी ? किं-कर्तव्य-विमूढ जनों का मार्ग दर्शन करने वाली, भगवद्गीता क्या यही गायी गयी थी ? अतीतकाल में दर्शन-सम्बन्धी गम्भीर विचार-विमर्श, क्या यही पर किया गया था ? क्या इसी भूमि के पुत्रों ने ही ससार मे, निरन्तर शान्ति का सञ्चार किया था ? यदि हाँ; तो फिर आज इस भूमि मे भी, कष्ट और अन्याय के सिवाय, शान्ति क्यो नही दृष्टिगत होती ? २

(३)

किमत्रैव, रामो दुष्टान्नाशयितुं महाभियानं कृतवान् ?
पतिव्रताया रक्षायै क्रोधेन चापसन्धानं कृतवान् ?
दृष्ट्वा सुजनं क्लेशयुतं राजन्यवर्गमन्याये निरतम्,
नीतिज्ञः कंसारिः कारितवानिहैव किं महाभारतम् ?
कथमिवाद्य जीवन्ति, सदा दुष्कृत्यं ये कुर्वन्ति कर्बुराः ?

(४)

किमत्रैव परमः कारुणिको बुद्धो दयाप्रचारं कृतवान् ?
किमशोकोऽपीहैव निखिलजीवानां क्षेमोपायं कृतवान् ?
किमत्रैव भूमौ सञ्जातः शङ्करस्य वेदान्तविचारः ?
किमिह दयानन्देन जिष्णुना पाखण्डस्य कृतः संहारः ?
गान्धिनाऽपि किमिहैव निर्मिता सत्याहिंसासरणिरुदारा?

(५)

हन्त ! न किं द्रक्ष्याम्येतस्या वैभवयुतं सशक्तं रूपम् ?
किं तद् दन्तकथावत् स्यास्यति, यदिह सदा प्रत्यक्षं भूतम्?
अद्य सैव भारतवसुन्धरा दीना हीना सहते तापम्,
व्यर्थमिदं जीवनं, धिगस्मान्, धिग्धिक् सर्वं क्रियाकलापम्।
धिक् तान् सुतान्, सम्मुखं येषां रोदिति माता दुःखकातरा ।।

मर्यादापुरुषोत्तम राम ने दुष्टों का विनाश करने के हेतु महाभियान, एव पतिव्रता की रक्षा के हेतु क्रोध-पूर्वक चाप-संधान, क्या इसी भूमि पर किया था ? सज्जनो को कष्ट-युक्त, एवं राजाओ को अन्याय-रत देखकर, परमनीतिज्ञ भगवान् कृष्ण ने, क्या महाभारत युद्ध यहीं पर करवाया था ? यदि हाँ; तो फिर निरन्तर दुष्कृत्य करने मे रत, नर-राक्षस, यहा पर आज भी, जी कैसे रहे है ? ३

परम कारुणिक भगवान् बुद्ध के द्वारा दया का प्रचार, एवं सम्राट् अशोक के द्वारा समस्त प्राणियो के कल्याण का उपाय, क्या यहीं पर किया गया था ? क्या आचार्य शकर ने वेदान्त का विचार, एवं विजयशील महर्षि दयानन्द ने पाखण्ड का संहार, इसी भूमि पर किया था ? अरे ! क्या महात्मा गाधी ने मत्य तथा अहिंसा के उदार मार्ग का निर्माण भी यहीं पर किया था ? ४

हाय ! क्या अब मैं इस भरतभूमि के वैभवमय एव शक्तिशाली रूप को फिर से न देख सकूगा ? जो जो विशेषतायें, इसमें प्रत्यक्ष-रूप से निरन्तर विद्यमान रहती थी, क्या आज वे सब दन्तकथा-मात्र बनकर ही रह जायेंगी ? हाय ! आज हमारी वही वैभवशालिनी वसुन्धरा, दीन-हीन होकर अनेको कष्ट झेल रही है ! आज हमारा जीना बेकार है । हमें धिक्कार है, हमारे समस्त क्रिया-कलापों को धिक्कार है, और साथ ही धिक्कार है, उन समस्त पुत्रो को, जो इस दुःख-कातरा माता को अपने सामने ही रोती हुई देख रहे हैं । ५

"त्वया सह कोऽपि न चेदायाति, वीर ! गच्छैकाकी मार्गे ।
सुखं यत् जगतः संघर्षेषु, लभ्यते तन्न सखे ! स्वर्गे ॥ १

मञ्जुलं कर्मपथं सम्प्राप्य, कीदृशं काठिन्यं ते दक्ष !
न यावल्लभसे स्वोद्देश्यं, न तावत् त्वं विश्रामं गच्छ ॥२

निशायां ध्वान्तच्छन्नायाम्, वरं वर्षत्वनलं मेघः ।
निश्चिते मार्गे भवतु तदापि, धीर ! ते तीव्रतरो वेगः ॥३

गमनतस्त्वं मिथ्यैव विभेषि, कियत्कालं तिष्ठति शयनम्?
समेषां जीवानामन्ततः, सुनिश्चितमस्तीदं गमनम्" ॥४

"निरन्तरमागम्यते तवैव, पवित्रायां यात्रायां देव !
विना विस्मरणं विभो ! ददस्व, धीरतासंवलमिह दययैव"॥५

"अहो ! संवलचिन्ताऽपि वृथैव,
यदा प्राप्तोऽस्मि तस्य मार्गम् ।

स्वयं द्रष्टुं योगक्षेमं,
य आगच्छति हित्वा स्वर्गम्" ॥६

"हे वीर ! यदि तेरे साथ चलने के हेतु कोई भी तैयार नही हो रहा, तो तू अपने मार्ग मे अकेला ही आगे बढ । हे सखे ! जो सुख ससार के सघर्षों मे मिलता है, वह स्वर्ग मे भी दुर्लभ है ।। १

हे दक्ष ! मञ्जुल कर्ममार्ग को प्राप्त कर चुकने पर, तुझे अब कठिनाई कैसी ? जबतक तुझे अपने लक्ष्य की प्राप्ति न हो जाय, तबतक तू रुककर विश्राम मत कर ।। २

अन्धकार से आच्छन्न निशा मे, भले ही बादलो से अग्नि की वर्षा क्यो न हो रही हो, परन्तु हे धीर ! अपने निश्चित किये हुए कर्तव्य-मार्ग पर, तुझे और तीव्रतर गति से आगे बढना चाहिये ।। ३

गमन से तू व्यर्थ ही भयभीत हो रहा है । यहाँ पर शयन भला ठहरता ही कितने समय है ? आखीर मे तो यह गमन सभी प्राणियो के लिए निश्चित ही है" ।। ४

"हे देव मै तो तुम्हारी पावन यात्रा मे ही निरन्तर आगे बढ रहा हू । हे प्रभो ! कृपा करके मुझ दीन को धैर्य-रूपी सबल प्रदान करना न भूलना" ।। ५

"अहो ! जबकि मैने उन करुणामय प्रभु के मार्ग को प्राप्त कर लिया है, तो फिर भला सबल की चिन्ता कैसी ? वे तो अपने जनो के योग-क्षेम को देखने के लिए, स्वर्ग छोड़ कर स्वय ही आया करते हैं" ।। ६

संसारयात्रा • • •

अत्र विरामेच्छा क्लीबत्वं, संसारो वै संसरणम् !

(१)

"उत्पन्नेयं कुत्र संसृतिः, प्रचलति वा कस्मान्नियमात् ?
कतियुगपर्यन्तमियं यास्यत्यारब्धा कियतः कालात् ?
आस्ते सा कीदृशी भावना, याऽस्याः सदा प्रेरयित्री ?
अस्यै किं सबलं वर्तते, कश्चास्या इह सहयात्री ?"
विनिश्चेतुमेतत् सर्वं, केनात्र कृतं बुद्धेर्वरणम् ?

(२)

चञ्चलमेतन्मनस्त्वदीयं, कथन्नैव लभते शान्तिम् ?
मृगतृष्णायाः पृष्ठे धावन्, को नहि गच्छति दुर्भ्रान्तिम् ?
एतादृशः कोऽस्ति, वद बन्धो ! येन भवे तुष्टिः प्राप्ता ?
सर्वजीवजीवनाख्यायिका, करुणाया लिप्यां लिखिता ।
सुखेन साकं दुःखं तिष्ठति, जीवनेन साकं मरणम् ।।

• • • संसार-यात्रा

निरन्तर चलते रहने का ही नाम ससार है। यहाँ पर रुककर आराम करने की अभिलाषा करना तो केवल नपुंसकता ही है।

(१)

"यह संसार कहां उत्पन्न हुआ ?, किस क्रम से चल रहा है ?, कितने युगों तक चलता रहेगा ?, कितने समय से चल रहा है ?, इसको चलाने वाली प्रेरणा कौन है ?, इसका पाथेय क्या है ?, तथा सहयात्री कौन है ?"; इस सबका निश्चय करने की बुद्धि भला किसके पास है ?

(२)

मानव ! तेरा यह चञ्चल मन आज शान्त क्यों नहीं होता ? मृगमरीचिका के पीछे दौड़ते हुए भला कौन व्यक्ति, दुःखमय भ्रान्ति को नहीं प्राप्त होता ? हे सखे ! बता, कि भला ऐसा कौन है, जिसे संसार मे पूर्ण सन्तोष प्राप्त हुआ हो ? इस संसार के तो समस्त प्राणियों की जीवन-गाथा करुणा की ही लिपि मे लिखी हुई है। यहा पर सर्वत्र, सुख के साथ तो दुःख लगा रहता है, एवं जीवन के साथ मरण।

(३)

लोको मामवगच्छति सुखिनं, दृष्ट्वा मे बाह्यं रूपम्,
विडम्बनेयं हा ! संसारे, कोऽपि न पश्यति हृत्तापम् ।
बहु दुःखं तस्यापि जीवने, सुखी दृश्यते यः प्राणी,
क्वापि सर्वदा नहि विराजते, सुखस्य वेला कल्याणी ।
जर्जरोऽस्मि जीवनयुद्धे, कुर्वे मुहुरपि दुःखाह्वानम् :—

(४)

"अरे ! दुःख ! विवशान् प्रपीडयसि दीनान् त्वं व्यर्थं भीतान्,
शक्तिश्चेदागच्छ मदीयं सम्मुखमिह, हित्वा हीनान् ।
दैवसहायादपि न विद्यते, त्वत्तो मे काचिद् भीतिः,
वीरा मृत्युमुखेऽपि निर्भया विशन्तीति विदिता रीतिः ।
ते क्लीबा, ये हित्वा युद्धं, यान्ति सपत्नानां शरणम्" ॥

(३)

दुनिया मेरे बाह्य-रूप को देखकर मुझे सुखी समझा करती है। हाय ! कितनी बड़ी विडम्बना है, कि संसार में हृदय की वेदना को देखने वाला कोई भी नहीं है। जो प्राणी बाहर से सुखी जैसा दिखायी देता है, उसके जीवन के अन्दर भी अत्यधिक दु:ख छिपा रहता है। सुख की कल्याणमयी वेला, इस संसार मे हमेशा कहीं भी नहीं ठहरती। निरन्तर जीवन-संघर्ष करते करते, मैं यद्यपि अत्यन्त जर्जर हो गया हूं, तथापि दु:ख का सामना करने के हेतु सदैव प्रस्तुत हूँ, तथा उसे बारम्बार ललकार रहा हूँ:—

(४)

"रे दु:ख ! तू विवश हुये, दीनों एवं भय-भीतों को बेकार ही पीड़ित किया करता है। यदि तेरे शक्ति है, तो कमजोरों को छोड़कर मेरे सामने आ। यदि दैव भी तेरी सहायता के लिये आ जाय, तो भी मुझे तुझसे कोई भी भय नहीं। यह बात तो सर्व-विदित ही है, कि वीर लोग मृत्यु के मुख मे भी, बिना डरे ही प्रविष्ट हो जाते है। जो लोग रण छोड़कर शत्रुओं की शरण मे चले जाते है, वे तो नपुंसक ही हो सकते हैं।

•••व्यथिता संसृतिः

मा पीडय संसृतिमसहायां, स्वयमेषा वेदनामयी रे !

नाति वयस्का तथापि वृद्धा,
संघर्षैरेषा संक्षुब्धा;
अश्रुमयी जीवनसरिदस्या, विपुलविषादावर्तमयी रे ! १॥

अस्या दीनमपत्यसहस्रम्,
पीडितमिह बुभुक्षयाऽजस्रम्;
सुखहीनं जीवनं वहन्तीं, व्यथयति हा ! लोको विषयी रे !२॥

क्वचिद् दृश्यते रक्तपिपासा,
क्वचिदभिमानः, क्वचिद् दुराशा;
वञ्चकास्तु बहवस्सन्त्यस्या, दृश्यते न कश्चित् प्रणयी रे।३॥

अस्याः सर्वं सुखं विनष्टम्,
चतुर्दिशं कष्टं हा ! कष्टम्;
तूर्णीमस्याः कुरु पदसेवां, मातेयं कल्याणमयी रे ! ४॥

° ° °व्यथित-संसृति

अरे मानव ! तू इस असहाय जगती को पीडा मत पहुँचा, यह तो स्वय ही वेदनामयी है।

यद्यपि अभी यह अधिक समय की नही है, तथापि वृद्धा सी हो चली है, एव सघर्षो के द्वारा अत्यन्त क्षुब्ध रहती है। आसुओ के जल से परिपूर्ण इसकी जीवन-सरिता मे वेदना की भयकर भँवरें उठा करती है॥ १

इसकी हजारो दीन सताने, क्षुधा से निरतर व्याकुल रहती है। हाय ! आनन्द से रहित जीवन का वहन करने वाली इस जगती को, विषयी मानव सदा सताता ही रहता है॥ २

यहा पर, कही तो रक्त की पिपासा दिखलाई पडती है, तथा कही अभिमान एव दुराशा। इस दुनियाँ को ठगने वाले तो बहुत है, परन्तु इससे प्रेम करने वाला, कोई भी नजर नही आ रहा॥ ३

इसके समस्त सुख नष्ट हो चुके हैं। हाय ! इसके लिये चारो दिशाओ मे दु ख ही दु ख है। हे मानव ! तू चुपचाप इसके चरणो की सेवा कर, क्योकि यही तो परम-कल्याणमयी माता है॥ ४

• • •संसृतेर्वैचित्र्यम्

चित्रं पश्य जगद्व्यापारम्
गतिमेतस्य विलोक्य चेतना, भ्रमति, याति नहि पारम् ॥१

को न विशति विस्मयमिह पश्यन्नतिविषमं व्यवहारम् ?
कश्चन रोदिति चणककणकृते, ऽपरः करोति विहारम् ॥२

अगणितजीवजीवितं लोके, साक्षात् पीडागारम् ।
अवलोक्यापि कथन्नहि कुरुते, करुणेशो निस्तारम् ?॥३

मृत्युर्मुञ्चति नैव सुन्दरीं, सुकुमारं न कुमारम् ।
अद्य यत्र सौधं श्व एव हा ! भवति तत्र कान्तारम् ॥४

भुवनं कम्पितमासीत् श्रुत्वा, यस्योग्रं हुङ्कारम् ।
क्वाऽसौ लङ्कापती रावणो ? यद्बलमभूदपारम् ॥५

यो देहोऽविरतं प्रयत्नतो, ऽलङ्क्रियते बहुवारम् ।
केवलमेकोऽञ्जलिर्भस्मनो, नान्यदस्ति तत्सारम् ॥६

अज्ञेया जगतः प्रहेलिका, वृथा करोषि विचारम् ।
ज्ञातुमिमं शक्नोति क इह, नटवरलीलाविस्तारम् ? ॥७

• • •संसार की विचित्रता

हे मानव ! तू इस दुनिया के विचित्र व्यापार को तो देख ! इसकी गति को देखकर, बुद्धि पार नहीं पाती, और चक्कर खाती रह जाती है ॥ १

इस संसार के अत्यंत विषम व्यवहार को देख कर, भला किसे विस्मय न होगा ? यहा पर कोई तो चने के एक दाने के लिये भी मुहताज रहता है, और कोई सुख-विहार में मग्न रहता है ॥ २

जगत मे अनेकों प्राणियों के जीवन को साक्षात् वेदना का आगार बना हुआ देखकर भी, करुणामय प्रभु उनका निस्तार क्यों नही करते ? ॥ ६

यहाँ पर मृत्यु न तो सुन्दरियों पर ही दया करती है, और न सुकोमल कुमारों पर ही । आज सुशोभित होने वाले महल, यहाँ कल ही घनघोर जंगलों मे परिणत हो जाते है ॥ ४

यह समस्त संसार जिसके भीषण हुंकार को सुनकर काँप उठता था, वह अतुलित-बलशाली लंकापति रावण आज कहाँ है ? ॥ ५

हे मानव ! तू अपने जिस शरीर को निरंतर प्रयत्नपूर्वक बारम्बार सजाने मे तल्लीन रहता है, वह केवल एक मुट्ठी भर राख की ढेरी मात्र है । उसका अन्य कोई भी सार नही ॥ ६

दुनियां की पहेली नितांत अज्ञेय है । हे सखे ! इस पर तेरा माथापच्ची करना बेकार है । नटनागर की लीला के विस्तार को, भला यहां समझ ही कौन सकता है ॥ ७

दहत्यग्निरुग्रोऽनिशं मामनन्तो,
न किं ज्वालजालस्त्वया दृश्यते हा ?

अयं नास्त्यपां शोषको वाडवाग्निः,
न वा पादपज्वालकः काननाग्निः,
न चुल्लीगतश्चापि; चित्रोऽयमग्निः;
हृदयमेव चैतेन संज्वाल्यते हा !

प्रविश्याऽकरोद् राघवं श्यामलं या,
तथा यादवं धूमतो धूमलं या,
दयाकारिणी या न दिव्येऽपि लोके,
तया ज्वालया मानसं दह्यते हा !

इयं शाक्यसिंहस्य चेतः प्रविष्टा
यतस्तस्य सर्वा सुखेच्छा विनष्टा,
दरिद्रं समृद्धं जहातीह नेयम्,
समस्तोऽपि लोकोऽनया ताप्यते हा !

न चेयं शिखा वारिणा शान्तिमेति,
शमाऽऽयासतो ऽत्यन्तमुग्रत्वमेति;
शनैरेव हृच्छोणितं शोषयन्ती
कदाचिल्लये शान्तिमापद्यते हा !

हे सखे ! कभी शान्त न होने वाली भीषण आग मुझे निरंतर जलाये डाल रही है। क्या तुझे ज्वालाओं का समूह दिखाई नही दे रहा ?

यह न तो पानी को जलाने वाली वाडवाग्नि है, और न वृक्षो को भस्म कर देने वाली दावाग्नि ही। यह रसोई के चूल्हे की आग भी नही है। हाय ! यह तो वह विचित्र अग्नि है, जो हृदयों को ही जलाया करती है।

जिसने भगवान् रामचन्द्र के अन्दर प्रवेश करके, उन्हे साँवला कर दिया था, भगवान् कृष्णचन्द्र को अपने धुयें से धूमिल कर दिया था, एवं जो दिव्य-पुरुषो के ऊपर तक कभी दया नही करती, वही (निष्ठुर) ज्वाला मेरे हृदय को भस्म किये दे रही है।

इसी ज्वाला ने कुमार सिद्धार्थ के भी हृदय मे प्रविष्ट होकर, उनकी समस्त सुख-कामनाओ को विनष्ट कर दिया था। यह धनी या निर्धन किसी को भी नही छोडती। यह तो अपने ताप से समस्त संसार को सतप्त करती रहती है।

यह पानी से बुझ जाने वाली ज्वाला नही है। यह तो बुझाने के प्रयत्नो से और भी अधिक भभकती है। धीरे-धीरे हृदय के रक्त को सुखाती हुई, यह कदाचित् मृत्यु के साथ ही शांति को प्राप्त होती है।

स्वात्मनिरीक्षणम्

बन्धो ! व्यर्थं वयो व्यतीतम्,

मृगतृष्णामनुधावसि सततं, पश्यसि कथमिव नान्तम् ?॥१

अहर्निशं विविधं प्रपीडनं, मृत्योस्ताण्डवनृत्यम् ।
क्षणभङ्गुरं विलोक्य भूतलं, तत्त्वं चिन्तय नित्यम् ॥२

सम्पत्तौ मा गच्छोल्लासं, विपत्तौ च भीरुत्वम् ।
प्रेम्णा स्वीकुरु तत्तत् सर्वं, यद्यत् प्रभुणा दत्तम् ॥३

निखिलवितर्कनाशिनीं धारय, हरिपादाम्बुजभक्तिम् ।
निरन्तरं साधय जगद्धितं, कुरु सफलां निजशक्तिम् ॥४

• • • स्वात्म-निरीक्षण

हे सखे ! तूने व्यर्थ ही आयु गँवाई। तू निरतर मृग-तृष्णा के पीछे तो भटकता फिरता है, परन्तु उसके परिणाम पर दृष्टिपात क्यो नही करता ? ॥ १

रातोदिन प्राप्त होने वाली विविध वेदनाओ, मृत्यु के ताण्डव-नृत्य, तथा इस ससार की क्षणभगुरता को देख कर तू सनातन तत्त्व का चिंतन कर ॥ २

सुख मे रगरेलिया करना, तथा दुःख मे रोना, ये दोनो ही बेकार हैं। तुझे तो परम-प्रभु जो भी प्रदान करे, उस सब को तू प्रेम से स्वीकार करता जा ॥ ३

ससार के समस्त कुतर्कों का नाश करने वाली, प्रभु के चरण-कमलो की भक्ति को, तू अपने हृदय मे धारण कर ले, एव निरतर जगत् के हित का साधन करते हुए अपनी शक्ति को सफल बनाले ॥ ४

प्रेम • • •

लोके यो व्यथितानां प्रेमी, धन्यं प्रेम तदीयम्,
मानव ! दिव्यं प्रेम तदीयम् ।

संसारः सुखिनं कामयते,
विपद्गतं दूरत उपेक्षते,
सञ्जातः प्रणयो व्यापारो, विडम्बना महतीयम् ॥ १

रसना ते वाञ्छति माधुर्यम्,
दृष्टिश्चिनुते तनुसौन्दर्यम्,
कथमुपेक्ष्यते दृग्जलधारा ? पुण्यमयी गङ्गेयम् ॥ २

त्वं यदि सद्भावनाविक्रयी,
यदि वेन्द्रियसुखकामी विषयी,
तदा पावनं प्रेमपदं मा, कलङ्कितं करणीयम् ॥ ३

दयितो निखिलसृष्टिविस्तारः,
साक्षादयं प्रभोराकारः,
लभतां प्रेम सदा निर्व्याजं, जगदेतद् रमणीयम् ॥ ४

• • •प्रेम

इस ससार मे जो व्यक्ति, दुखियो से प्रेम करने वाला है, उसका प्रेम धन्य है। हे मानव ! उसका प्रेम दिव्य है।

दुनियाँ वालो को तो सुखियो की ही चाह रहती है। दुखियो की तो वे, दूर से ही अवहेलना करते रहते है। यह कितनी बडी विडम्बना है, कि आज प्रेम भी व्यापार बन गया है ! १

तेरी, रसना को तो सदैव माधुर्य की चाह बनी रहती है, एव दृष्टि निरन्तर शारीरिक-सौन्दर्य की खोज मे व्यस्त रहती है। हे सखे ! तूने दुखियो के आँसुओ की धारा की उपेक्षा कैसे कर दी ? वही तो साक्षात् पुण्यमयी गङ्गा है ॥ २

यदि तू सद्भावना को बेचने वाला, अथवा इन्द्रिय-सुखो का अभिलाषी विषयी मात्र है, तो फिर सावधान ! तुझे प्रेम के पावन क्षेत्र को कलकित करने का कोई भी अधिकार नहीं है ॥ ३

ससार की यह विस्तीर्ण निखिल सृष्टि, बहुत ही प्यारी है। यह तो साक्षात् प्रभु का ही स्वरूप है। मेरी तो यही कामना है, कि यह समस्त रमणीय जगत्, सभी के निश्छल प्रेम को निरन्तर प्राप्त करता रहे ॥ ४

वृन्दावनम् • • •

चेतश्चल वृन्दावनकुञ्जम्,
नन्दकुमारचरणकमलाभ्यां, परिपूतं छविपुञ्जम् ॥ १

विविधविहगकुलकलरवयुतमृदुतरुवरराजितगुञ्जम् ।
निर्मलकालिन्दीश्यामलजलविलसितलोलतरङ्गम् ॥ २

भाति यत्र गोकुलसंयुक्तं, गोवर्धनगिरिश्रृङ्गम् ।
शरदुत्फुल्लमल्लिकामोदः, कर्षति सहृदयभृङ्गम् ॥ ३

परमानन्दो निवसति, भक्तिर्नृत्यति, यत्र सलीलम् ।
कर्मयोगिकेलिस्थलमेतत्, कृन्तति कश्मलकीलम् ॥ ४

• • • वृन्दावन

हे मन ! तू वृन्दावन के कुन्ज में चल, जो भगवान नन्दनन्दन के चरण-कमलों के द्वारा पावन, एवं सुषमा का आगार है ॥ १

—जहाँ पर, विविध पक्षि-समूहों के कलरव से युक्त कोमल वृक्षों में गुन्जायें सुशोभित हो रही हैं, तथा मलरहित यमुना के श्यामल जल में चञ्चल लहर विलास कर रही हैं ॥ २

—जहाँ पर, गउओं के समूहों से युक्त गोवर्धन पर्वत का शिखर सुशोभित हो रहा है, तथा शरद में विकसित मल्लिका का सौरभ, सहृदय-रूपी भवरों को (अपनी ओर) आकर्षित कर रहा है ॥ ३

—जहाँ पर परमानन्द निवास किया करता है, एवं भक्ति, लीलापूर्वक नृत्य किया करती है, कर्मयोगी भगवान् कृष्ण की ऐसी यह क्रीडास्थली, मोह के कीले को (समूल) काट देती है ॥ ४

दर्शनोत्कण्ठा • • •

हे सखि ! चल कालिन्दीकूलम्,
कुसुमितहरितलतासु चन्द्रिका विलसति यत्र सलीलम् ।। १

यत्र रहसि वादयति मुरलिकामतिमधुरं वनमाली ।
यस्या नादो वृन्दाविपिनं मदयति नवरसशाली ।। २

वेणुरवः श्रुतिविवरं प्रविशति, चित्तं नन्दकिशोरः ।
नैव रोचते परिजनभवनं, न सुखं, न हि परिवारः ।। ३

पीतवसनवरबर्हविभूषितमोहनमुखमाधुर्यम् ।
हा ! पास्यामि कदा नयनाभ्यां ? तृषा विकलयति कायम् ।। ४

• • •दर्शनों की उत्कण्ठा

हे सखी ! तू यमुना के उस तट पर चल, जहाँ पर खिली हुई हरी-हरी लताओ मे, चादनी, लीलापूर्वक विलास कर रही है ।। १

—जहाँ पर वनमाला धारण करने वाले भगवान श्याम-सुन्दर, एकात मे अतिमधुर मुरली वजा रहे हैं, जिसकी नवरस-भरी तान वृन्दावन को मतवाला वना रही है ।। २

मुरली की तान मेरे कानो मे प्रवेश कर रही है, एव नन्दकिशोर मेरे मन मे समाये जा रहे है । इस समय न तो मुझे घर और परिजन ही अच्छे लगते हैं, और न सुख तथा परिवार ही ।। ३

हाय ! मैं अपने नयनो से, पीताम्बर एव सुन्दर मोरपखो से अलकृत मोहन की मुखमाधुरी का पान कब करूँगी ? इस समय तृष्णा, मेरे शरीर को अत्यधिक वेचैन किये दे रही है।।४

भ्रमरगीतम्

मधुप ! तव गानं निःसारम् ।
वृथाऽऽ गच्छसि वारंवारम् ॥

अहो ! पिशुन ! जानासि किम्, दशां मदीयां नैव ?
नन्दकिशोरवियोगजा, हृदि निवसति पीडेव ॥
दहति या देहं सुकुमारम् ॥१

विरहिण्या मम जीवनं, नितरां शून्यमवेहि ।
व्यथितां मा पीडय मुहुः, शीघ्रं दूरमपेहि ॥
क्षते मा लेपय रे ! क्षारम् ॥२

'मम वीरः स्वामी गतो, जगद्व्यथाहरणाय' ।
एतदेव बहु वर्तते, षट्पद ! मे तोषाय ॥
न कुरु निजकरुणाविस्तारम् ॥३

हे भँवरे ? तेरा गान व्यर्थ है। तू मेरे पास बारवार बेकार आता हैं।

अरे क्रूर ! क्या तू मेरी दशा को नही जानता ?, कि इस समय मेरे हृदय मे नन्दनन्दन भगवान श्याम की विरह-वेदना का ही निवास है, जो मेरे कोमल शरीर को जलाये डालती है ॥ १

मुझ विरहिणी का जीवन अत्यन्त सूना हो गया है। अब तू मुझ दुखिया को बारम्बार अधिक दुखी न कर, तथा शीघ्र ही यहाँ से दूर हट जा। हे मधुप ! इस समय तू 'जले म नमक मत छिड़क' ॥ २

'मेरे वीर स्वामी, जगत की व्यथा का हरण करने के हेतु गये हुए है', केवल यही मुझ विरहिणी के सतोप के लिए पर्याप्त है। अत पट्पद ! मेरे प्रति तुझे अपनी करुणा का विस्तार करने की आवश्यकता नहीं है॥ ३

प्रभोरन्वेषणम्

विरहातपेन जीवनमिह सञ्जातं विरसम्,
नाहं जाने प्राप्स्यामि कदा परमानन्दम् !

अवगाहितवानहमखिलमिमं संसारम्,
भ्रान्तो निर्जनगिरिवनमध्ये बहुवारम् ।
कृतवान् दर्शनसिद्धान्तानां सुविचारम्,
नाप्नोमि परं जगदासेचनकं गोविन्दम् ॥१

यस्यार्थमिदं निःसरति गीतिमयच्छन्दः,
यस्यार्थमत्र बद्धोऽयं कविताबन्धः ।
व्याप्तोऽस्ति यस्य सर्वत्र मादको गन्धः,
द्रक्ष्यामि तं क्व सुरसेव्यपदाम्बुजमकरन्दम् ॥२

यं बिना दृश्यते वृथाऽखिलः संसारः,
यश्चैक एव विद्यते जीवनाधारः ।
यं बिना सर्वथा निःसारः सुखसारः,
तं प्राप्तुमिदं चेतः कुरुते करुणाक्रन्दम् ॥३

पुष्पे पुष्पे तस्यैव विद्यते वासः,
इह चराचरे निखिले तस्यास्ति निवासः ।
द्रष्टुं शक्नोमि तदापि न तमहो ! त्रासः,
दूरीकर्तुं प्रभुरस्ति स एव दृष्टिमान्द्यम् ॥४

• • •प्रभु की खोज

विरह-ताप से यह जीवन बिल्कुल नीरस हो चला है। न जाने, मैं परमानन्द-स्वरूप प्रभु को कब प्राप्त कर सकूंगा !

मैंने इस समस्त संसार को मथ डाला, अनेकों बार निर्जन वनों एवं पर्वतो मे भटकता फिरा, तथा दर्शनशास्त्र के सिद्धांतों में भी खूब माथापच्ची की; परन्तु अपनी सुषमा की झलक से, समस्त ससार को तृप्त कर देने वाले परम प्रभु को आज तक न पा सका ।। १

जिसके लिए हृदय से ये गीतिमय छन्द निःसृत हो रहे हैं, जिसके लिए यह काव्य-प्रबन्ध रचा जा रहा है, जिसका मादक सौरभ इस समस्त ससार में व्याप्त है, एवं जिसके चरण-कमलों का मकरंद देवताओं के लिए भी सेवनीय है, उस परमप्रभु के दर्शन मैं कहा पा सकूंगा ?।। २

जिसके बिना यह सारी दुनियाँ बेकार है, जो इस जीवन का एकमेव आधार है, एवं जिसके बिना जगत् के समस्त सुख सार-हीन है, उस परम-प्रभु को पाने के हेतु यह हृदय तड़प रहा है ।। ३

संसार के प्रत्येक पुष्प मे उसी का सौरभ समाया हुआ है, तथा यह समस्त चराचर उसकी ही निवास–स्थली है; परन्तु फिर भी मैं उसे देख नही पा रहा, यही तो इस जीवन की विडम्बना है। अब तो मेरी इस दृष्टि-मन्दता को दूर करने मे यदि कोई समर्थ है, तो केवल वही ।। ४

मृत्युः • • •

विद्यते सर्वत्र मृत्यो ! ते विचित्रं शासनम्,
भूतले सर्वोन्नतं तव राजते सिंहासनम् ।

विस्तृतं भुवनं समस्तं, ते प्रियं क्रीडास्थलम्,
सर्वसंहारोऽतिघोरः, क्रीडनं तव मञ्जुलम् ।
रसमयं गानं त्वदीयम्, लोककरुणाक्रन्दनम् ॥१

हे जगद्बन्धो ! त्वया नोपेक्ष्यते कश्चिज्जनः,
वीरहृदयः पामरो वा श्रीधरो वा निर्धनः ।
त्वं समेषामेव कुरुषे प्राणिनामालिङ्गनम् ॥२

साम्यकर्तारं भये, त्वां विस्मरन्ति जनाः सदा
अतस्त्वयि सहसाऽऽगते, तैः प्राप्यते कष्टं मुधा ।
कुर्वते वीरा मुदा, ते स्वागते सर्वार्पणम् ॥३

शान्तिदं हरिनामवत्, तव नाम्नो वर्णद्वयम्,
त्वं तु गन्तव्यस्थलं तद्, यत्र यास्यामो वयम् ।
पावनं स्मरणं त्वदीयं, सर्वभीतिनिवारणम् ॥४

• • • मृत्यु

हे मृत्यो ! तेरा विचित्र शासन, समस्त सृष्टि के ऊपर विद्यमान है, तथा संसार मे तेरा सिंहासन सबसे ऊँचा है।

यह समस्त विस्तृत जगती, तेरी प्रिय क्रीडास्थली; अति-घोर सर्वसंहार, तेरी मञ्जुल क्रीडा, एवं लोक का करुण क्रन्दन ही तेरा रसमय गान है ॥ १

हे विश्व-बन्धु ! तू किसी की भी उपेक्षा नहीं करता। चाहे वह वीर हो या कायर, अथवा धनी हो या दरिद्र, तू तो जगत के प्रत्येक प्राणी का प्रेमालिंगन किया करता है ॥ २

लोग प्राय. तुझ लोक-साम्य-कारी को भूल जाया करते है। अतएव तेरे सहसा उपस्थित होने पर, उन्हे व्यर्थ मे ही कष्ट का अनुभव होता रहता है। वीर लोग तो तेरे स्वागत मे, आनदपूर्वक अपना सर्वस्व अर्पित कर देते है ॥ ३

तेरे नाम के दो अक्षर, प्रभु के नाम की ही भाँति, शांति प्रदान करने वाले हैं। तू तो वह गन्तव्य-स्थल है, जहाँ पर हम सभी को जाना है। तेरा पावन स्मरण, संसार के समस्त भयों को दूर भगा देने वाला है ॥ ४

"नीत्वाऽऽपणतो मह्यं किञ्चित्,
प्रत्यागतः किमम्ब ! पिता मे" ?
पृष्टवान् क्षीणो लघुबालः
सोल्लासं षडब्ददेशीयः ।
"नाहं जाने गच्छ बहिस्त्वम्"
इत्युत्तरमाकर्ण्य जनन्याः,
पीतमुखोऽसौ खिन्नो जातः ।
दुर्बलेन चाग्रजेन साकम्
विवशो गृहाद् बहिर्निर्गच्छन्
सोत्कण्ठाभ्यां मृदुनयनाभ्याम्
आलोकितवान् गुडं तदाऽसौ,
यस्तु पिहित आसीदतिजीर्णे
मलिनपटे बहुयत्नपूर्वकम् ।
पुनरुवाच मातरं प्रत्यसौ—
"अम्ब ! कीदृशी प्रवञ्चना ते ?
कथं ददासि न गुडमावाभ्याम्,
आपणतोऽस्मत्पित्राऽऽनीतम्" ?

• • • •

• • • प्रश्न

छः वर्ष के एक दुर्बल छोटे बच्चे ने उल्लास-पूर्वक पूछा कि, "हे मा ! मेरे लिये कुछ लेकर, क्या पिताजी बाजार से लौट आये ?"

"मुझे कुछ नही मालूम, जा, बाहर भाग जा", माता के इस उत्तर को सुनकर, खिन्नता के मारे उस बेचारे का मुँह पीला पड गया। विवश होकर अपने दुर्बल बडे भाई के साथ घर से बाहर जाते समय, उसकी ललचाई हुई कोमल आँखे, अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण एवं मैले वस्त्र मे बडे ही यत्न से ढक कर रखे हुए, गुड के ऊपर सहसा पड ही गई।

वह अपनी माता से फिर बोला, " माँ ! तू हमे भुलावा क्यो दे रही है ? पिताजी के द्वारा हम लोगो के लिए बाजार से लाये हुए गुड मे से थोडा थोडा दे क्यो नही रही ?"

• • • •

तयोर्गुडेच्छां विस्मारयितुम्
जर्जरहृदया माताऽकथयत्—
"निशामुखे दास्यामि पुत्रकौ !
नास्मिन् काले गुडः खाद्यते" ।
तौ सन्ध्याऽऽगमनप्रतीक्षणे
बालकौ तु निजकृशाङ्गुलीभिः
गुलिकां खेलन्तौ बहिरास्ताम् ।
शुष्कबदरपेषणसंलग्ना
माताऽतिष्ठत् मनसा रुदती ।
करुणापूर्णाभ्यां नयनाभ्याम्
निःसरतिस्म वेदना मूका ।

• • • •

समागते सायङ्काले सा
दृष्ट्वा पतिमुपविष्टमपृच्छत्—
"आर्यपुत्र ! कस्यां चिन्तायाम्
मग्न इदानीमत्र निषण्णः ?
गत्वा वनं निम्बपत्राण्यपि
कथं न चानीतान्यजाकृते" ?

गुड खाने की इच्छा से उनके मन को हटाने के लिये, उस घायल हृदय वाली माता ने उत्तर दिया, "मेरे बच्चो शाम हो जाने दो, फिर मैं स्वय ही दे दूगी । इस समय गुड नही खाया जाता।"

सन्ध्या के आगमन की प्रतीक्षा करने वाले वे दोनो बालक तो घर से बाहर, अपनी कृश अगुलियो से गोली खेलने मे लगे रहे; तथा बेरी के सूखे हुए फलो को पीसती हुयी उनकी माता घर के अन्दर मन ही मन रुदन करने मे लगी रही। उसके करुणा-भरे नयनो से मूक वेदना की धारा निरन्तर प्रवाहित होती रही।

• • • •

सायकाल हो जाने पर अपने पति को बैठा देखकर, उसने पूछा, "आर्यपुत्र! आप इस समय यहाँ किस चिन्ता मे निमग्न बैठे हुए हैं! आप जगल मे जाकर बकरी के लिए अभी नीम की पत्तियाँ भी नही लाये ?"

स तु दीर्घं निश्वस्याकथयत्—
"किं कथयामि शुभे ! गत आसम्
दातुं गुडं वैश्यगृहमध्ये,
तेनैवाद्य य आसीद् दत्तः
आपणतो गेहं प्रापयितुम् ।
भृतिदानावसरे तेनोक्तम् :—
'पुनस्तोलनात् प्रतीयते यद्
गुडो वर्तते किञ्चिन्न्यूनः,
त्वद्बालैः प्रतिभाति खादितः' ।"
श्रुत्वैतत् खिन्नया गृहिण्या
बालयोस्तु भर्त्सनमारब्धम् ।

• • • •

"गुडस्थले भर्त्सनं कीदृशम्
जातेऽप्यसिन् सायङ्काले ?"
पीडयति स्म चिरमयं प्रश्नः
मृदुलमानसं तयोर्बालयोः ।

पति ने लम्बी आह भर कर उत्तर दिया, "क्या बताऊँ शुभे! अभी मैं सेठ के घर वही गुड़ देने गया था, जिसे उसने आज बाजार से घर पहुंचाने के लिए दिया था। मजदूरी देते समय सेठ ने यह कहा, कि 'फिर से तौलने पर यह गुड थोड़ा कम पड़ रहा है। मालूम होता है, कि तेरे घर के बच्चो ने इसे खाया है'।" यह सुन कर वह खिन्न गृहिणी अपने दोनों बच्चों को डाटने लगी।

• • • •

"सायकाल हो जाने पर भी, गुड़ के स्थान पर यह डाट कैसी?"—यह प्रश्न उन बच्चों के कोमल हृदय को बहुत देर तक व्यथित करता रहा।

...कालिदासं प्रति

कविकुलगुरुवर्य ! विभो !! स्वीकुरुष्व वन्दनम् ।

(१)

श्रद्धामयमानसेन,

भक्तिविनतमस्तकेन,

विश्वकवे ! क्रियते तव हार्दिकमभिनन्दनम् ।

(२)

प्रीतिस्तव मलरहिता;

गीतिरमृतसारयुता;

नयति सदा पुण्यपथे, नीतिर्जनजीवनम् ।

(३)

मृदुला तव काव्यलता

दिव्यभावकुसुमयुता

कुरुते रससौरभेण, सहृदयजनरञ्जनम् ।

(४)

कण्वसुता शकुन्तला

स्नेहतपस्त्यागबला

वहति शाश्वतं यशःसितं त्वदीयकेतनम् ।

•••कालिदास के प्रति

हे अनन्त-प्रतिभाशाली कविकुल-गुरु कालिदास ! तुम हमारी वन्दना स्वीकार करो।

(१)

हे विश्वकवे ! हम अपने भक्ति-विनत मस्तक, एव श्रद्धा-युक्त मानस के द्वारा तुम्हारा हार्दिक अभिनन्दन कर रहे हैं।

(२)

तुम्हारा प्रेम मल-रहित है; गीति अमृत-सार से सयुक्त है; एव तुम्हारी नीति, जन-जीवन को पुण्य-पथ मे ले जाने वाली है।

(३)

दिव्य-भाव-रूपी कुसुमो से सुशोभित तुम्हारी सुकोमल काव्य-लता, अपने रस-रूपी सौरभ के द्वारा विश्व के सहृदय-जनो का अविराम अनुरञ्जन करती रहती है।

(४)

स्नेह, तपस्या, एव त्याग की शक्तियो से समलकृत कण्व-पुत्री शकुन्तला, तुम्हारी यशो-धवलित अमर पताका को निरतर वहन कर रही है।

सिद्धार्थस्य महाभिनिष्क्रमणम्

राजते स्म नीरवा यामिनी, गगनं ताराच्छन्नम्,
सुधाकरः कुरुते स्म भूतलं, निजरसकणिकाविलग्नम् ।
अधिकारं कृतवती समस्ते चराचरे सुखनिद्रा,
चिन्तातुरचित्तस्य कृते परमत्र कीदृशी तन्द्रा ?
पार्श्वशयानां प्रियामथच पुत्रं पश्यन्नुद्विग्नः,
चिन्तयतिस्म तदा सिद्धार्थः करुणाजलधिनिमग्नः—

"चेतोहरा प्रणयिनीयं मे यशोधरा सुकुमारी,
यत्प्रेमद्रुमतले संज्वरो नश्यतीव संसारी ।
त्यक्त्वा स्नेहमयौ पितरौ, प्रियसखीश्चात्मनो गेहम्,
मत्प्रणयप्रत्ययादागता मदन्तिकं सस्नेहम् ।
मां सम्प्राप्य मुदितचित्ता शेते सुखेन विश्वस्ता,
त्याग इदानीमेतस्याः, किं विश्वासस्य न हत्या ? २।

सिद्धार्थ का महाभिनिष्क्रमण

उस समय नीरव यामिनी विराजमान थी, तथा आकाश तारा-गणो से जगमगा रहा था। सुधाकर इस पृथ्वीतल को अपने रस-कणो के द्वारा शीतल बना रहा था। समस्त चराचर मे तो निद्रा-देवी का पूर्ण अधिकार हो चुका था, परन्तु चिन्ता से व्याकुल व्यक्तियो के हृदयो मे भला तन्द्रा कहाँ ? उस समय पास मे लेटी हुई अपनी प्रियतमा, एवं पुत्र को देखते हुए, उद्विग्न हृदय वाले कुमार सिद्धार्थ, करुणा के सागर मे डूबे हुये से, कुछ सोच रहे थे—

"जिसके प्रेम-रूपी हरे-भरे वृक्ष के नीचे समस्त सासारिक ताप, नष्ट जैसे हो जाते है, ऐसी यह मेरी प्रिया यशोधरा, कितनी सुकोमल, सुन्दरी एव प्रेममयी है ! अपने स्नेह-भरे माता-पिता, प्यारी सखियो, तथा अपने घर-द्वार को छोड़कर, मेरे प्रेम के विश्वास मे ही, यह मेरे पास प्रेम-पूर्वक निवास कर रही है। मुझको प्राप्त करके प्रसन्न मन वाली यह प्रिया, इस समय विश्वास-युक्त सुख के साथ, मेरे पास सो रही है। ऐसी दशा मे इसका त्याग करना, भला क्या विश्वास की हत्या करना न होगा ? २ ॥

पितुराशावल्लरीप्रसूनं केवलमहमेकाकी,
निजदेहं धारयति मदर्थं मातृस्वसा वराकी ।
कपिलवस्तुवासिनः प्रतीक्षन्ते मे शासनकालम्,
द्रष्टुमुत्सुकाः सचिवा राजतिलकयुक्तं मम भालम् ।
प्रियजनपरित्यागकल्पनया सर्वं ज्वलति मदंगम्,
रिक्तं हन्त ! करोमि कथं स्वपितुर्वृद्धस्योत्सङ्गम् ? ३ ॥

नवजातोऽयं शिशुरपेक्षते परिपालनं सरागम्,
त्यक्त्वा चैनमहं तु चौरवद् रात्रौ भजे विरागम् ।
एतस्यापि नैव जाने कीदृशमास्ते दुर्भाग्यम्,
परित्यक्तुमिच्छति निष्करुणः शैशव एव पिता यम् ।
किं साम्प्रतं विहायैनं, गन्तुं योग्योऽयं कालः ?
अद्याहं हा ! सञ्जातो विकरालादपि विकरालः" ॥ ४

एतस्यां चिन्तायामासीद् विस्मृत इव परमार्थः,
अतिविषमां कर्तव्यमूढतां सम्प्राप्तः सिद्धार्थः ।
परं श्रुता तदैव तेनैका हृदयगुहायां वाणी,
या भवसन्तप्तानां सर्वेषामभवत् कल्याणी—
"रे सिद्धार्थ ! किमनुशोचसि ? तव पलायते शुभवेला,
मिथ्यामोहे मा कदापि सत्यस्य भवेदवहेला ॥ ५

अपने पिता की आशा–वल्लरी का प्रसून, अकेला केवल मैं ही हूँ। मेरी बेचारी मौसी, मुझे ही देखकर जी रही है। कपिलवस्तु की जनता मेरे शासनकाल की प्रतीक्षा मे है, एव मन्त्री लोग मेरे मस्तक को राजतिलक से अलङ्कृत देखने को उत्सुक हो रहे है। अपने प्रिय-जनो के परित्याग की कल्पना मात्र से ही, मेरे समस्त अङ्ग जले जा रहे है। हाय ! मैं इस समय अपने वृद्ध पिता की वात्सल्य-भरी गोद को किस भाँति रिक्त करूँ ? ३ ॥

मेरे इस नवजात प्यारे शिशु को तो, मेरे प्रेम-पूर्ण लालन-पालन की आवश्यकता है, और मैं रात मे ही इसे छोड़कर, चोर की भाँति भाग जाना चाहता हूँ। जिसको कि निष्ठुर पिता, आज शैशव मे ही त्यागना चाह रहा है, ऐसे इस शिशु का भी न जाने कैसा दुर्भाग्य है ! इस समय यह अवसर, भला क्या इसको त्याग कर चले जाने के लिए उपयुक्त है ? हाय ! आज मैं विकराल से भी अधिक विकराल बन गया हूँ" ॥४

इस प्रकार की चिन्ताओ मे परमार्थ, भूलने सा लगा था; एवं सिद्धार्थ अतिविपम किंकर्तव्य-विमूढता को प्राप्त होते जा रहे थे, कि सहसा ही उन्हे अपनी हृदय-गुहा के अन्दर, भव-ताप से पीड़ित प्राणियों के कल्याण से युक्त, एक अलौकिक वाणी सुनाई पड़ीः—

"हे सिद्धार्थ ! तू किस सोच-विचार में पड़ा हुआ है ? तेरी मंगल-वेला बीती जा रही है। अरे ! इस मिथ्या मोह मे पड़कर कहीं सत्य की अवहेलना न कर बैठना ॥५

अधुना त्वं पतितोऽसि यस्य मिथ्यासङ्गस्य विमोहे,
स्थास्यत्ययं कियन्तं कालं ? चिन्तय निजबुद्ध्या हे !
फुल्लान्यद्य सुमानि यानि, तान्यपरदिने म्लायन्ते,
कीटा भक्षयन्ति कायांस्तान् ये रत्नैर्भूष्यन्ते ।
स्नेहलालितः कुन्तलराशिः तृणवत् ज्वलति चितायाम्,
राजा रङ्को व स्यात् सर्वो भस्मीभवति चितायाम् ॥६

अत उत्तिष्ठ, जहीमं क्षणिकं विनश्वरं संसारम्,
यदविनश्वरं परमं तत्त्वं, कुरु तस्यैव विचारम् ।
समधिगच्छ सुखदं पुण्यं निर्वाणोपायं सत्यम्,
यस्मात् तापमयं जगद् भवेदानन्दामृतसिक्तम्" ।
सिद्धार्थो बहिरागतवान् श्रुत्वेदं स्वात्माह्वानम्,
वैभवमयं स्वगेहं हित्वा सहसा, मोहनिदानम् ॥ ७

'इस समय तू जिस मिथ्या सग के विमोह मे पड़ा हुआ है, वह कब तक स्थिर रहने वाला है ?' इस प्रश्न पर अपनी बुद्धि से विचार कर। ससार मे जो सुमन आज खिले हुये दृष्टिगत होते है, वे दूसरे ही दिन कुम्हला जाते है। जो शरीर आज रत्नाभूषणो द्वारा अलकृत दिखाई देते हैं, वे एक दिन कीडो का आहार बन जाया करते हैं। स्नेह के द्वारा लालित कुन्तल राशि, चिताओ मे तृणो की भाँति जल जाती है। चाहे राजा हो या रक, अन्ततोगत्वा चिताओ मे जलकर सभी को भस्म होना ही पडता है ॥६

अतएव अब तू उठ, और इस नश्वर ससार को त्याग दे, तथा जो अविनाशी परम तत्त्व है, उसी मे अपना मन लगा। तू निर्वाण के उस सुखद, सत्य, एव पावन उपाय को प्राप्त करले, जिससे कि यह समस्त तापमय जगत्, आनन्द के अमृत से सिंचित किया जा सके।" अपने इस आत्माह्वान को सुनकर, समस्त मोहो के कारण-स्वरूप वैभवमय राजमहल से, कुमार सिद्धार्थ सहसा ही, बाहर निकल आये ॥७

तदाहूय छन्दकमिदमवदद् युवराजोऽयमभोगी—
"निःशब्दः सन् हयमानय, भव पुण्यपथे सहयोगी।
विदधे नूनमभद्रमादिशन् यद्यपि गुरुतुल्यं त्वाम्,
परं जगत्कल्याणेच्छा कुरुतेऽत्यन्तं विवशं माम्"।
प्रत्यवदत् छन्दकः-,"कीदृशा एते भवद्विचाराः ?
कुत्र गन्तुमिच्छन्ति निशायामेकाकिनः कुमाराः ?" ८

पुनरवदत् छन्दकं सान्त्वयन् सदयं राजकुमारः—
"अहर्निशं किं नहि विलोक्यते ज्वलन्मयं संसारः ?
सृष्टौ महामोहमय्यामिह 'सर्वं दुःखं दुःखम्',
कोऽस्ति सुखी सन्तुष्टो वा, मुञ्चति मृत्युज्वाला कम् ?
तत्र कथं तिष्ठानि ? यत्र निष्ठुरकालस्य निवासः,
उत्पन्नो भवरोगमहौषधमाप्तुं हृद्यभिलाषः ॥ ९

उस समय भोगो से विमुख हुये उस राजकुमार ने छन्दक को बुलाया, और उससे, विना शब्द किये ही अश्व तैयार करने, तथा अपनी पावन-यात्रा मे सहयोग देने का अनुरोध किया। सिद्धार्थ ने उससे कहा, कि "यद्यपि गुरु तुल्य आपको आदेश देकर, मैं निश्चित ही धृष्टता कर रहा हू, तथापि, (मेरे मन मे जगी हुई) समस्त जगत के कल्याण की कामना, इस समय मुझे वैसा करने को अत्यन्त ही विवश कर रही है।" यह सब सुनने के उपरात छन्दक ने उत्तर दिया, कि, "कुमार! आपने यह क्या सोचा है? निशा की इस वेला मे आप अकेले ही कहा जाना चाह रहे है?" ८ ॥

विस्मित एव दुखी छन्दक को सान्त्वना प्रदान करते हुये, राजकुमार ने करुणापूर्वक पुन बोलना आरम्भ किया, कि, "छन्दक! यह समस्त ससार, क्या तुम्हे रातोदिन जलता हुआ नही दिखाई पड रहा? इस महा मोह मयी सृष्टि मे दु ख ही दु ख तो है। इस जगत मे सुख अथवा सन्तोष भला किसे मिल पाता है, तथा मृत्यु की भयकर ज्वाला मे जलने से कौन बच पाता है? भला, तुम्ही बताओ, कि जहा पर निष्ठुर काल का निवास हो, वहा पर मैं किस भाति रहूँ? इस समय तो अब, मेरे हृदय के अन्दर, भव-रोग की महौषधि को खोजने की उत्कट अभिलाषा जाग्रत हो चुकी है॥ ९

अहमिच्छामि जगद्द्वन्द्वानामचिरं भवतु विनाश;
अहमिच्छामि पीडितानां नश्यतु पीडासंत्रासः ।
यातु लयं सर्वथा चराचरतस्तापानां सत्ता,
शीघ्रं भवतु समग्रेयं सुखशान्तिमयी मानवता ।
इमां शुभेच्छां सफलां कर्तुं मयाऽचिरं गमनीयम्,
विनश्वरे मिथ्यासुखपूर्णे गेहे किं करणीयम् ?" १०

परिज्ञाय निश्चयं छन्दकः किञ्चिद् वक्तुमशक्तः,
हयमानीयाऽनयत् कुमारं तदा परं सन्तप्तः ।
अतिक्रम्य सुमहान्तं मार्गं, जाते प्रातःकाले,
हयछन्दकौ विहाय कुमारोऽविशदरण्यतरुजाले ।
सुकुमारो युवराजः सञ्जातो निर्जनवनवासी,
निष्क्रान्तो जनकल्याणार्थं मङ्गलपथे प्रवासी ॥ ११

मेरी तो अब यही कामना है, कि इस जगत के समस्त द्वन्द्वो का विनाश हो जाय, और साथ ही नष्ट हो जाँय दुखियो की समस्त वेदनायें। इस चराचर से तापो की सत्ता का पूर्णत लोप हो जाय, एव समग्र मानवता सुख तथा शाति से भर जाय। अपनी इस मगलमयी अभिलाषा को पूर्ण करने के हेतु, मुझे अब यहा से शीघ्र ही चला जाना चाहिये। बताओ, कि विनश्वर, एव मिथ्यासुखो से भरे हुये इस घर मे, मैं भला कर ही क्या सकता हूँ ?" १० ॥

सिद्धार्थ के अविचल निश्चय को जानकर, उस समय छन्दक से कुछ भी वोलते न बना। अत्यधिक दुखी मन से, अश्व लाकर वह कुमार को लेकर चल पडा। राती-रात बहुत बडे मार्ग को पार करके प्रात काल होने पर, कुमार ने अपने प्रिय अश्व, एव छन्दक से विदा ली, तथा अकेले ही जगली वृक्षो के समूह के अन्दर अदृश्य हो गये। कलतक जो सुकुमार युवराज था, वही आज निर्जन वनो का वासी बन गया। जनकल्याण के निमित्त निकला हुआ यह यात्री, मगल-पथ मे (दूर) निकल गया ॥ ११

• • •भावनाबुद्धिसंवादः

अथैकदा विनोदार्थं, तत्त्वज्ञानां विपश्चिताम् ।
मतिभावनयोर्मध्ये, वादोऽभूत् सुखदः शिवः ।। १

औत्सुक्याद् बहवस्तत्र, श्रोतारः समुपस्थिताः ।
सभाध्यक्षासनं रम्यं, भारत्या समलङ्कृतम् ।। २

प्रथमं भाषितुं प्राप्य, समादेशं मतिस्तदा ।
महातर्कमयी मञ्चं, सोत्साहं समुपागता ।। ३

उवाच बुद्धिः, "निखिले चराचरे
मदीयमेवास्ति दृढं सुशासनम् ।
विपश्चितो, वैभवशालिनो, नृपाः
प्रसादमिच्छन्ति ममैव सन्ततम् ।। ४

पशुत्वतो गर्हितवृत्तितो नरान्
नयामि चातुर्यमयीं सुसभ्यताम् ।
न तेन साफल्यलवोऽपि लभ्यते
स्वजीवने, यः समुपेक्ष्यते मया ।। ५

भावना-बुद्धि-संवाद • • •

एकबार तत्त्वज्ञ विद्वानो के मनोरञ्जन के हेतु, बुद्धि एव भावना के मध्य, एक सुखदायी तथा मगलमय वाद विवाद का आयोजन हुआ ॥ १

कौतूहल वश, वहा पर बहुत से श्रोतागण एकत्र हो गये, एव ज्ञानेश्वरी सरस्वती, सभापति के आसन पर सुशोभित होने लगी ॥ २

पहले ही भाषण करने का आदेश पाकर, महातर्कमयी बुद्धि, उस समय उत्साह-पूर्वक मञ्च पर, उपस्थित हुई ॥ ३

बुद्धि ने कहना आरम्भ किया, कि "इस समस्त चराचर मे मेरा ही सुदृढ एव सुन्दर शासन है। विद्वान लोग, धनी-मानी, एव राजा लोग, सभी निरन्तर मेरी ही कृपा के अभिलाषी बने रहते है ॥ ४

निन्दित आचरण वाली पशुता से मनुष्यो को हटाकर, मैं ही उन्हें कौशलमयी सभ्यता प्रदान करती हू, तथा यहाँ पर, यदि मैं किसी भी व्यक्ति की उपेक्षा कर दूँ, तो जीवन मे वह सफलता का कण भी नही प्राप्त कर सकता ॥५

अनेकशस्त्रास्त्रसुयन्त्रसाधनैः
प्रजा मया वीर्यवती विधीयते ।
सुशोभते चात्र मयैव भारती,
कलापि लोकेषु जनानुरञ्जनी ॥ ६

न कल्पनाया निकटे व्रजाम्यहम्,
न भावलोकप्रियतापि मे हृदि ।
विवेच्य सम्यक् सुचिरं हिताहितम्,
यथार्थवादे विचरामि सुस्थिरे ॥७

विचारयुक्तैव हि सत्फला क्रिया,
विपत्फला या सहसा विधीयते ।
बिना विचारेण करोति यो नरः
सुकार्यमप्यत्र तथापि निन्द्यते ॥८

बिना प्रमाणेन न गृह्यते मया
ऋषेर्वचो वाऽस्तु च शास्त्रशासनम् ।
स्वचक्षुषा यन्न विलोक्यते स्फुटम्,
तदस्तु विश्वासपदं कथं ? वद ॥९

सुखे यदाहं, सुहृदस्तदैव मे;
नरो विपन्नः समुपेक्ष्यते न कैः ?
अतोऽस्ति लक्ष्यं प्रथमं सुखार्जनम्,
परोपकारस्तदनन्तरं भवेत् ॥१०

अनेकों शस्त्रास्त्रों, एवं सुन्दर यन्त्रादिकों के साधनों द्वारा, जनता को मैं ही शक्तिशालिनी बनाती हूं। इस संसार में सरस्वती भी, मेरे ही द्वारा सुशोभित होती है, और लोगों का मनोरञ्जन करने वाली कला भी ॥६

न तो मैं कभी कल्पना के ही निकट जाती हूं, और न मेरे हृदय मे, भाव-लोक के प्रति ही, कोई अनुराग है। लाभ और हानि का भली-भाँति विवेचन करने के उपरान्त, मैं तो केवल सु-स्थिर यथार्थवाद मे ही विचरण किया करती हूं ॥७

संसार में केवल विचार-पूर्वक की हुई क्रिया ही, श्रेष्ठ फल वाली होती है। सहसा की हुई क्रिया का परिणाम, तो केवल, विपत्ति ही होता है। बिना विचार किये हुए, यदि कोई मनुष्य, यहां पर श्रेष्ठ कार्य भी करता है, तो भी, संसार मे उसे निन्दा का ही पात्र बनना पड़ता है ॥८

चाहे वह ऋषियों की वाणी हो, या शास्त्रों का विधान, मैं तो प्रमाण के बिना कुछ भी स्वीकार नही करती। बताओ, कि जो वस्तु, अपनी आंखों द्वारा, स्पष्ट रूप से देखी भी न जा सकती हो, वह भला! विश्वास के योग्य हो ही कैसे सकती है? ॥९

जब तक मैं सुख में हूं, तभी तक मेरे हजारो मित्र हैं। विपत्ति में पड़े हुए व्यक्ति की उपेक्षा, भला यहाँ कौन नही करता? इसलिये सुखों का अर्जन करना ही, मनुष्य का मुख्य ध्येय होना चाहिये। परोपकार करना, तो उससे बाद की बात है ॥१०

यथा विधत्ते पुरुषः शुभाशुभम्,
तथैव नूनं लभतेऽत्र तत्फलम् ।
यदा जगत् कर्मनियन्त्रितं, तदा
विपद्गते प्राणिनि कीदृशी दया ? ॥११

ममास्ति विज्ञानघनं परं पदम्
समुज्ज्वलं कान्तिमयं महाद्भुतम् ।
विशन्ति तत्प्राप्तुमनन्तसाधने
महाजनास्त्यक्तसमस्तकामनाः" ॥१२

महान्निनादो मुदितात्मनां तदा
बभूव बुद्धेरभिनन्दने सताम् ।
चमत्कृतां तत्र विधाय तां सभाम्
शनैः शनैः सा विरराम शेमुषी ॥१३

• • • •

सरस्वत्याः समादेशं, लब्ध्वा विनयशालिनी ।
भावनाऽपि तदा वक्तुं, मन्दं मन्दं प्रचक्रमे ॥ १४

"अहं न जानामि सभानुशासनम्,
न भाषणं नैव च तर्कपद्धतिम् ।.
तथापि वक्तुं यदहं समागता,
गुरोः समादेश इहास्ति कारणम् ॥ १५

यहाँ पर मनुष्य, जैसा अच्छा-बुरा कर्म करता है, उसे निश्चित ही, उसका फल भी वैसा ही मिलता है। अतः जब कि यह संसार अपने ही द्वारा किये गये कर्म के अनुसार, सुख एवं दु:ख को प्राप्त करता रहता है, तो फिर भला यहाँ व्यथितों के प्रति दया करने की आवश्यकता ही क्या है ?॥११

मेरा श्रेष्ठ स्थान, विज्ञानमय, समुज्ज्वल, कान्तिमय, एव बड़ा ही अद्भुत है। अपनी समस्त कामनाओ को त्यागकर, ससार के महापुरुष, इसी को प्राप्त करने के लिये ही तो, अनन्त साधनों में जुटे रहते हैं" ॥१२

उस समय बुद्धि के इन वचनों से प्रमुदित हुये सभ्य लोगो ने, उच्च स्वर से जय-नाद करके उसका अभिनन्दन किया; तथा बुद्धि ने भी, उस सभा को चमत्कृत करके, धीरे धीरे अपना भाषण समाप्त किया ॥१३

• • • •

इसके अनन्तर, सरस्वती के आदेश को पाकर, विनय-शालिनी भावना ने भी, धीरे धीरे बोलना आरम्भ किया ॥१४

भावना ने कहा, कि "न तो मैं सभाओं के नियमों से ही परिचित हूं, और न भाषण अथवा तर्क करने की कला से ही। इस समय जो मैं यहाँ पर बोलने के लिये उपस्थित हुई हूं, उसका कारण तो केवल गुरु-जनों का आदेश ही है ॥१५

उरीकरोमीह मुदैव सर्वदा
क्रियां प्रभोः प्रेरणया समागताम् ।
अनिष्टचिन्ता तु वृथैव, विद्यते
नियोजको मङ्गलविग्रहो यदा ॥ १६

मदीयवाणी बहुशस्तु मूकताम्
श्रितैव भावं विवृणोत्यशेषतः ।
बिनाऽपि शब्दार्थसमन्वितैः पदैः
ममार्थसिद्धिः स्वयमेव जायते ॥ १७

विपश्चिता गौरवशालिना सताम्
करोम्युपेक्षा, न गिरा कथञ्चन ।
शृणोम्यहं बालवचोऽपि सादरम्,
स्वय तु याम्यत्र नहि प्रगल्भताम् ॥ १८

न केवलं मानव एव मे पदम्
न पण्डिता वेदविदो विशारदाः ।
सुधामये स्नेहमये सुमानसे
वनेचराणामपि मे तु संस्थितिः ॥ १९

निसर्गसौन्दर्यमयी मम स्थली,
विभेदहीना समतासमन्विता ।
सुखेन सर्वे निवसन्ति सन्ततम्,
करोति पीडाऽपि न तत्र पीडनम् ॥ २०

प्रभु की प्रेरणा से सम्मुख उपस्थित हुये प्रत्येक कार्य को मैं आनन्द पूर्वक ही स्वीकार करती रहती हू। जबकि मगलमय प्रभु ही, जगत के समस्त कार्यों के नियोजक है, तब फिर भला! अनिष्टो की चिन्ता ही क्या? ॥१६

अनेको बार तो मेरी वाणी, मूकता को धारण करने पर भी, अपने भावो का पूर्ण प्रकाशन कर लेती है, एव मेरी कार्य-सिद्धि, शब्दार्थ-युक्त पदो के प्रयोग के बिना भी स्वयमेव हो जाया करती है ॥१७

गौरवशाली विद्वान सज्जनो के वचनो की उपेक्षा, मैं कभी नही करती। मैं तो यहाँ, बालको के वचनो को भी आदर पूर्वक ही सुनती हूँ, तथा स्वय कभी भी वाचालता को प्राप्त नही होती ॥१८

मेरा क्षेत्र, केवल मनुष्यो, पण्डितो, अथवा कुशल वेदवेत्ताओ तक ही सीमित नही। मै तो, सुधा एव स्नेह से परिपूर्ण वनचारियों के भी मानस मे विद्यमान रहती हूँ ॥१९

नैसर्गिक रमणीयता से युक्त मेरी स्थली, समस्त भेदभावो से रहित, एव समता से समन्वित रहती है। वहाँ तो सभी लोग, आनन्द पूर्वक निवास किया करते हैं, तथा स्वय पीडा भी किसी को पीडा नही पहुचाती ॥२०

न मे परः कोऽपि जगत्सु विद्यते,
समस्तभूतेषु ममात्मभावना ।
विधातुरेकस्य कृतिर्हि संसृतिः,
विरोधिता प्राणिसु कीदृशी तदा ? ॥ २१

अपेक्षया प्रेम करोति यो जनः,
सहायतां प्रत्युपकारलिप्सया ।
असौ जडः स्वार्थमयेन कर्मणा
कलङ्कितं नाम करोति चेतयोः ॥ २२

अहं तु वाञ्छाम्यखिलं चराचरम्
प्रयातु संमोदमयीं कुटुम्बिताम् ।
करोतु सर्वोऽत्र कृतिं सुनिश्छलाम्,
व्रजन्तु नाशं च वणिक्प्रवृत्तयः ॥ २३

बलेन शास्त्रेण च यन्त्रसाधनैः
धनेन वाऽप्यात्मसुखं न लभ्यते ।
कथं बिना भक्तितरोः समाश्रयाद्
भवातपो नश्यतु देहधारिणाम् ? ॥ २४

अहं न वाञ्छामि कदापि सत्क्रियाम्,
न चापि कीर्तिं, न धनं, न सद्गतिम् ।
चकास्तु सद्भावसुधाऽऽर्द्रविग्रहम्
जगत् सदा, मे त्वियमेव कामना" ॥२५

संसार का कोई भी प्राणी, मेरे लिये पराया नही। मेरे लिये तो यह समस्त चराचर, आत्म-स्वरूप ही है। जब कि यह अखिल सृष्टि, एक ही विधाता की रचना है, तब फिर भला! प्राणियो के प्रति यहाँ भेद-भाव का बर्ताव ही कैसा? ॥२१

जो व्यक्ति, प्रेम तो किसी कामना की पूर्ति के लिये, एवं सहायता, प्रत्युपकार की लिप्सा से, किया करता है, वह जड, अपने स्वार्थमय कर्म के द्वारा, प्रेम और सहायता, इन दोनो के पावन नाम को कलंकित ही करता है ॥२२

मैं तो चाहती हूँ, कि यह समस्त चराचर, एक आनन्दमय परिवार मे परिणत हो जाय, यहाँ पर सभी लोग निश्छल व्यवहार करे, एव लेन-देन की प्रवृत्तियाँ, विनाश को प्राप्त हो जाँय ॥२३

बल, शास्त्र, यन्त्र, एवं धन इत्यादि के साधनो से, यहाँ पर आत्म-सुख की प्राप्ति, कथमपि नही हो सकती। बिना, भक्ति-रूपी तरुवर की छाया का आश्रय ग्रहण किये, शरीर-धारियों का भव-ताप, भला दूर ही कैसे हो सकता है? ॥२४

मुझे सत्कार, यश, धन, एवं यहाँ तक कि सद्गति की भी रञ्चमात्र अभिलाषा नही है। मेरी तो एकमात्र यही कामना है, कि सद्भाव की सुधा से अभिषिक्त शरीर वाला यह जगत्, निरन्तर सुषमा-पूर्ण बना रहे" ॥२५

• • • •

निशम्य रुचिरां वाचं, भावनाया रसान्विताम् ।
जगाद परमप्रीता, तदेत्थं निखिला सभा- ॥ २६

"त्वमेव दिव्ये ! सुषमामयी सदा
सुधामयी, स्नेहमयी च भावने !
करोषि कर्तव्यपराङ्मुखानपि
त्वमेव सत्कर्मपथे पुरःसरान् ॥ २७

त्वया बिना देवि ! नराः करालताम्
व्रजेयुरित्यत्र न कोऽपि संशयः ।
त्वयैव चित्तं विमलं विधीयते,
विराजते येन जगत्सु बन्धुता" ॥ २८

मतिभावनयोर्वादं, श्रुत्वा हृष्टा सरस्वती ।
अन्ते स्वीकीयाभिमतं, कथयन्तीदमब्रवीत्- ॥ २९

"विरोधिता चेदनयोर्व्रजेत् क्षयं,
सुसङ्गमश्चात्र भवेद् द्वयोः शुभः ।
तदा तु लोकस्य कृतार्थताऽखिला
सुनिश्चिता चापि सुखस्य पूर्णता" ॥ ३०

उस समय, भावना की रस से भरी हुई, एव सुन्दर वाणी को सुनकर, परम आह्लाद को प्राप्त हुई वह समस्त सभा, इस प्रकार वोली –॥२६

'हे भावने ! तुम निरन्तर ही सुधामयी, स्नेहमयी, एव सुपमामयी हो। कर्तव्य से पराङ्मुख हुये व्यक्तियो को भी, तुम्ही तो सत्कर्म पथ पर अग्रसर करती रहती हो ॥२७

इसमे रञ्चमात्र भी सन्देह नही, कि यदि जगत मे तुम न रहो, तो मनुष्य वहुत ही विकराल बन जाय। मनुष्यो के हृदयो को मल रहित करके, तुम्ही तो जगती तल मे प्रेम को प्रतिष्ठित करती हो" ॥२८

वुद्धि तथा भावना के इस वाद विवाद को सुनकर प्रसन्न हुई सरस्वती ने, अन्त मे अपना अभिमत प्रकट करते हुये यह कहा –॥२९

"यदि वुद्धि एव भावना का विरोध नष्ट हो जाय, तथा इन दोनो का मगल-मय मिलन हो जाय, तव तो यह ससार, सम्यक् रूप से कृतार्थ हो जाय, एव सुख भी निश्चित रूप से पूर्ण विकास को प्राप्त हो जाय" ॥३०